आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2002

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका

ड्रीम 2047

जून 2002 खण्ड 4 अंक 9

विज्ञान प्रसार समाचार

एमेच्योर रेडियो (हैम रेडियो) प्रदर्शन गतिविधियां

विज्ञान प्रसार ने बच्चों के बीच हैम रेडियो को लोकप्रिय बनाने के अपने प्रयासों के तहत अप्रैल 24, 2002 को स्प्रिंगडेल स्कूल, धौलाकुंआ, नई दिल्ली में हैम रेडियो का प्रदर्शन एवं व्याख्यान कार्यक्रम आयोजित किया। बच्चों ने कई सौ किलोमीटर दूर बैठे एक अज्ञात व्यक्ति से शार्ट वेव्ह पर आधारित रेडियो के माध्यम से बातचीत करने का आनंद लिया। महाराष्ट्र के अहमदनगर स्थित एक हैम रेडियो आपरेटर श्री दत्तात्री देवगांवकर VU2DSI ने विज्ञान प्रसार स्थित क्लब VU2NCT द्वारा दिए गए संकेतों का उत्तर दिया और बच्चों से बातचीत की। दिल्ली एवं उसके आसपास स्थित 16 विभिन्न स्कूलों के बच्चों को विज्ञान प्रसार द्वारा 3 मई 2002 को एक विज्ञान मेले में हैम प्रदर्शन के एक अन्य कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर मिला। यह विज्ञान मेला इन्द्रधनुष 2002 सर्च (SEARCH) द्वारा आयोजित किया गया था। बच्चों ने श्री दत्तात्री से VU2NCT/MUE एमेच्योर रेडियो क्लब स्टेशन के माध्यम से लगभग एक घंटे बातचीत की। इस प्रदर्शन कार्यक्रम में श्री सुशील धींगरा VU2LFA (नई दिल्ली), ने रेडियो पर बातचीत करके सहयोग दिया। माउण्ट सेण्ट मेरी स्कूल, दिल्ली कैंट में हैम का एक कार्यक्रम विज्ञान प्रसार द्वारा 8 मई 2002 को आयोजित किया गया। श्री मुक्तेश चन्द्र VU2HJZ, दिल्ली पुलिस के IPS अधिकारी भी इस कार्यक्रम में मौजूद थे। उन्होंने बच्चों को आपदा प्रबन्धन के समय हैम रेडियो की उपयोगिता को समझाया। श्रीमती भारती प्रसाद VU2RBI (नई दिल्ली) और सुशील धींगरा, VU2LFA (नई दिल्ली) ने VU2NCT/MUE क्लब स्टेशन से बातचीत करके सहयोग दिया।

इस अंक में

संपादकीय
- चार्ल्स डारविन

- एड्स केवल चिकित्सा समस्या ही नही है
- सार्वत्रिक भौतिक नियतांक तथा गुच्छ परिकल्पना

- अगरकर शोध संस्थान, पुणे

- रिचर्ड सोनेनफेल्ड्ट

- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

माउण्ट सेण्ट मेरी स्कूल, दिल्ली कैंट में हैम रेडियो प्रदर्शन

''इन्द्रधनुष–2002'' द्वारा हैम रेडियो का प्रदर्शन

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें....वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से रैक्मो प्रेस प्रा. लि., सी–59, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–I, नई दिल्ली–110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

रास्ते बंद नहीं हुए

25 मई, 2002 को केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने बारहवीं कक्षा का परिणाम घोषित किया। परिणाम घोषित होने के एक सप्ताह के अंदर ही दिल्ली में छह किशोरों ने आत्महत्या कर ली। सीबीएसई परिणाम घोषित होने के बाद लगभग प्रति वर्ष यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। ऐसा लगातार क्यों हो रहा है? आखिर ऐसा क्या है जो इन होनहार बच्चों को ऐसा घातक कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है। निश्चित रूप से, इसका कोई एक कारण नहीं बल्कि कारणों का एक संयोजन हो सकता है। बच्चे और उनके माता–पिता बोर्ड परीक्षा को उनके जीवन की परीक्षा मान लेते हैं। वे यह समझ नहीं पाते कि यह उनका जीवन निर्माण करने वाली बहुत–सी परीक्षाओं में से मात्र एक परीक्षा है– यहां रास्ता बंद नहीं हो जाता। तो फिर, वह क्या है जो उन्हें वहां पहुंचा देता है जहां से वे लौटकर नहीं आ सकते। क्या वह माता–पिता के दबाव एवं उच्चाकांक्षा का घातक संयोजन तो नहीं है? क्या ऐसा बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण तो नहीं हो रहा? या, फिर वह भविष्य के बारे में फैली अनिश्चितता तो नहीं है?

वह काफी शुरू से ही बच्चों के दिमाग में गहरे बैठ गयी यह बात है कि सिर्फ डॉक्टर, इंजीनियर, या एमबीए जैसी वृत्ति वालों का ही महत्त्व होता है। अधिकांश बच्चे और माता–पिता यह नहीं जानते कि उनके लिए बहुत सारे दूसरे रास्ते (वृत्तियां) और अवसर भी मौजूद हैं। शायद यह भी एक कारण है कि लाखों बच्चे मेडिकल और इंजीनियरिंग कोर्सों में नामांकन के लिए प्रवेश परीक्षाओं में बैठते हैं और यह संख्या प्रति वर्ष तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। वस्तुतः कला और विज्ञान संबंधी कोर्सों को अनिश्चित विकल्प के रूप में देखा जाता है। इसीलिए अधिकांश लोग इन क्षेत्रों में कैरियर को बहुत कम महत्त्व देते हैं। दुर्भाग्यवश, समाज में और माता–पिता के बीच दूसरे क्षेत्रों में मौजूद अवसरों के प्रति व्याप्त लापरवाही ही है जो इस प्रकार की दुखद स्थिति को जन्म देती है।

निश्चित रूप से, अधिकांश बच्चे अपनी शैक्षणिक उपलब्धि के संबंध में औसत होते हैं और वे इस वर्णक्रम के बीच में आते हैं। रोचक तथ्य यह है कि उनमें से अधिकांश में ललित कला, प्रदर्शन कला, विज्ञान या साहित्य के लिए प्राकृतिक क्षमता मौजूद होती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित स्थान होता है, जहां वह आराम से व्यवस्थित हो जाता/जाती है। हालांकि बिरले ही उनको अपनी रुचि के अनुसार काम करने का अवसर दिया जाता है। उनकी रुचि, इच्छा और पसंद को क्रमशः व्यवस्थित रूप से दबा दिया जाता है। उनके प्रयासों को बेकार कर दिया जाता है। माता–पिता, विद्यालय और समाज की अवास्तविक आशाएं उन पर काफी अधिक दबाव डालती हैं। यदि उन्हें अपने वास्तविक (व्यावहारिक) लक्ष्य को निर्धारित करने और प्राकृतिक रूप से उसे प्राप्त करने की अनुमति दे दी जाये, तो दबाव और तनाव क्रमशः समाप्त हो सकते हैं। व्यावहारिक लक्ष्य के साथ ही साथ उनको कठोर परिश्रम की कीमत एवं आवश्यकता के बारे में भी सिखाने की जरूरत है। इससे तनाव एवं हतोत्साहन से प्रभावशाली तरीके से निपटने में सहायता मिलेगी।

एक मनोचिकित्सक के अनुसार, परीक्षाएं या परिणाम लम्बी अवधि की समस्या का एक शुरुआती समाधान मात्र है। उच्च अंक प्राप्त करने का दबाव, माता–पिता की महत्त्वाकांक्षा और अच्छा न करने का अपराध बोध युवाओं को यह विश्वास दिलाता है कि आत्महत्या ही इससे छुटकारा दिलाने का एकमात्र उपाय है। हमें अपने बच्चों पर अपनी महत्त्वकांक्षाएं नहीं थोपनी चाहिए, तथा यदि वे परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त नहीं कर पाते हैं तो उन्हें इस अपराध बोध से ग्रसित नहीं होने देना चाहिए। इसके लिए यह अति आवश्यक है कि बच्चों की प्राकृतिक रुचि जानने की कोशिश की जाये और तब उनको एक उपयुक्त कैरियर पहचानने में उनकी मदद की जाये। इससे एक बच्चे को सफलता की अनम्य एवं संकीर्ण संकल्पना से उबरने में सहायता मिलेगी। अंततः एक सफल कैरियर का तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति अपने द्वारा चुने गये क्षेत्र में सर्वोत्तम प्रयास करता है, वह जो कर रहा/रही है उसमें उसे आनंद मिलता है, और उसमें वह काफी आगे निकल जाता है। हम लोगों को अपने से बड़ों और मित्रों के साथ एक सहयोग प्रणाली विकसित करने की भी जरूरत है। इन लोगों को आत्महत्या–प्रवृत्त बच्चों में पाये जाने वाले अवसाद को समाप्त करने में एक सकारात्मक भूमिका अदा करनी चाहिए। इससे उन बच्चों को खराब परिणाम की घटना का सामना करने की शक्ति मिलेगी। इसके अलावा, यह भी आवश्यक है कि विद्यालय में बच्चों के शिक्षक उनके साथ संवाद करने में सक्षम हों और उनके अंदर की चिंताओं एवं संदेहों को बाहर निकालने में सहायक बनें। विद्यालय में दिया जाने वाला नियमित परामर्श भी किसी भी प्रकार की हिंसक प्रवृत्तियों को रोकने में सकारात्मक भूमिका अदा कर सकता है।

कभी–कभी हम पाते हैं कि किसी विशेष समय में किसी विशेष क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक अवसर मौजूद होते हैं। 70 के दशक के पूर्वार्द्ध के दिनों को याद कीजिए, जब विज्ञान के कोर्सों में प्रवेश कितना मुश्किल होता था। ऐसा तब था जब देश में परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में कैरियर काफी प्रतिष्ठापूर्ण माना जाता था। 70 के दशक के मध्य में भी यही स्थिति थी, जब विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों के विस्तार के बाद वाणिज्य के कोर्सों के लिए भगदड़ मच गयी थी। उसके बाद गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों, पर्यावरण और दूरसंचार के क्षेत्र में भी ऐसी ही स्थिति रही। 90 के दशक में सूचना प्रौद्योगिकी और उसके बाद जैवप्रौद्योगिकी का बोलबाला रहा। तथापि, यह भी याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि किसी की रुचि का क्षेत्र होने के बावजूद किसी विशेष क्षेत्र में नौकरियां तो सीमित ही होती हैं। निश्चित रूप से, सरकार या निजी प्रतिष्ठान सब को नौकरी देने की न तो व्यवस्था कर सकते हैं और न ही वादा कर सकते हैं।

तो फिर, नौकरियां और अवसर हैं कहां? हमें अपने बच्चों को उचित स्थान प्राप्त करने में सहायता करनी चाहिए, और उन पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को थोपने से बचना चाहिए। उन्हें एक ऐसे वातावरण में विकसित होने दें, जिसमें वे अपनी पसंद के अनुसार चयन कर सकें और अपने हितों की रक्षा कर सकें। उन्हें अपना कैरियर चुनने के लिए निश्चित रूप से पर्याप्त वृत्तियां और अवसर मिलेंगे। हमारे बच्चे तब उस बिन्दु पर नहीं पहुंच पायेंगे जहां से वे वापस आ ही नहीं सकते।

❑ विनय बी. काम्बले

सम्पादक : विनय बी. काम्बले
पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 6967532, फैक्सः 6965986
ई–मेल : vigyan@hub.nic.in
वेबसाइट : http://www.vigyanprasar.com

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं।

चार्ल्स डारविन

आधुनिक जीव विज्ञान के जन्मदाता

❒ सुबोध महंती

हम क्या हैं? हम कहां से आए हैं? हम कहां जाएंगे?

इन सनातन प्रश्नों से हर मानव जूझा है पर उसे संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका।

विकास के सिद्धांत का प्रकाश न हो तो जीवन विज्ञान में कुछ भी संगत नहीं लगता।

थियोडोसियस डोब्झांस्की

विज्ञान से जुड़े व्यक्ति के रूप में मेरी सफलता की मात्रा का निर्धारण विज्ञान–प्रेम, किसी विषय पर असीम धैर्य से लंबे चिंतन........तथ्यों के परिश्रम से निरीक्षण और संकलन, पर्याप्त आविष्कारक प्रवृत्ति, और उसके साथ ही साधारण ज्ञान जैसे मेरे जटिल और विविधता भरे गुणों से हुआ है। इसलिए यह सचमुच अचरज भरी बात लगती है कि इन मामूली गुणों वाले मेरे जैसे व्यक्ति ने कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विज्ञानियों के विश्वासों को काफी सीमा तक प्रभावित किया होगा।

अपनी जीवनी में चार्ल्स राबर्ट डारविन

चार्ल्स डारविन की वैज्ञानिक उपलब्धियों के विस्तार, या उनकी गहराई की तुलना बहुत कम लोगों की उपलब्धियों से की जा सकती है। डारविन की ''ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीसीज़'' के प्रकाशन के साथ ही जीव विज्ञान परिपक्व विज्ञान बन कर उभरा। उनका लेखन स्पष्ट और प्रेरक है। उनके जैसी आकर्षक लेखन–शैली विज्ञान–लेखन में बिरले ही देखने को मिलती है। यदि निकोलस कोपर्निकस ने यह साबित किया कि ब्रह्मांड में पृथ्वी की कोई विशिष्ट स्थिति नहीं है, तो डारविन ने यह सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्य के पूर्वज अन्य प्राणियों के पूर्वजों से अलग नहीं थे। ऐसा सिद्धांत विकसित करने के कारण डारविन की हंसी उड़ाई गई। यहां तक कि बाद के दिनों में डारविन स्वयं भी अपने सिद्धांत से पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। लेकिन आज उनका वही सिद्धांत आधुनिक जीव विज्ञान की आधारशिला माना जाता है। जूलियन हक्सले ने कहा है, ''डारविन का सिद्धांत ''धरती पर जन्म लेने वाला सर्वाधिक सशक्त और व्यापक सिद्धांत है। यह हमें अपनी उत्पत्ति समझने में सहायता देता है...... हम एक संपूर्ण प्रक्रिया के अंग हैं, हम उसी पदार्थ से बने हैं, और उसी ऊर्जा से संचालित होते हैं, जिससे संपूर्ण ब्रह्मांड बना है, हमारा पालन और जनन भी वैसी ही प्रणाली करती है, जो जीवन के सभी रूपों का पालन और जनन करती है।''

चार्ल्स राबर्ट डारविन

चार्ल्स डारविन का जन्म 12 फरवरी, 1809 को श्रुस्बरी, (इंग्लैंड) में हुआ था। वह डॉ. राबर्ट वारिंग डारविन के पांचवें लड़के थे। उनके पिता चिकित्सक एवं विज्ञानी एरास्मस डारविन के पुत्र थे और माता सुसन्ना मिट्टी के बर्तनों के बहुत बड़े व्यवसायी जोसिआ वेड्शवुड की पुत्री थीं। डारविन केवल आठ साल के थे, तभी जुलाई, 1817 में उनकी माता का निधन हो गया। डारविन का लालन–पालन उनकी बहन कैरोलीन ने किया।

नौ वर्ष की आयु में सन् 1818 में डारविन का दाखिला डा. बटलर के श्रुस्बरी स्कूल में कराया गया। लेकिन स्कूली पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था। उनकी निगाह में श्रुस्बरी स्कूल की पढ़ाई बिल्कुल नीरस थी। अपनी स्कूली पढ़ाई पर टिप्पणी करते हुए डारविन ने लिखा है, ''शिक्षा के माध्यम के रूप में स्कूल में मेरे लिए कुछ नहीं था। मैंने वहां रसायन शास्त्र पढ़कर और उससे संबंधित प्रयोग करके आनंदित होने के अलावा और कुछ नहीं सीखा।'' लेकिन प्राकृतिक विश्व के बारे में उनमें प्रबल उत्सुकता थी। बचपन से ही डारविन में खोज करने और साहसिक पहल लेने की प्रवृत्ति थी। उन्हें असाधारण प्रकार के जीवित और निर्जीव पदार्थों का संकलन करना पसंद था। डारविन के सौभाग्य से उनका घर जंगलों और वन्य जीवों से घिरा हुआ था। सेवेर्न नदी उनके घर 'द माउंट' के ठीक दाहिनी ओर बहती थी। वहां खोजने लायक वस्तुओं और स्थानों की भरमार थी। घर के आस–पास पाए जाने वाले पक्षियों, मछलियों और मेढकों में डारविन की गहरी दिलचस्पी थी। उन्हें कीड़ों, विशेषकर दुर्लभ कीड़ों का संग्रह करने का बड़ा चाव था। केवल 13 साल की उम्र में उन्होंने एक विज्ञान–जर्नल में घर के पास से पकड़े गए एक नई प्रजाति के कीड़े का वर्णन किया। अपनी जीवनी में उन्होंने कीड़ों को पकड़ने के अपने एक अभियान का काफी विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है, ''मैं अपने उत्साह का एक उदाहरण देता हूं। एक दिन पेड़ की पुरानी छाल फाड़ने पर मैंने दुर्लभ श्रेणी के दो भृंग देखे और उन दोनों को अपने एक–एक हाथ में पकड़ लिया, तभी मैंने एक नए प्रकार का तीसरा कीड़ा देखा। मैं उसे छोड़ नहीं सकता था। इसलिए दाहिने हाथ में पकड़े कीड़े को मैंने झट से अपने मुंह में डाल लिया। अफसोस, उसने कोई ऐसा तीखा द्रव छोड़ा, जिससे मेरी जीभ जल गई। मजबूरन मुझे उसे थूंकना पड़ा। इस तरह वह तो मेरे हाथ से निकल ही गया, साथ ही तीसरा कीड़ा भी पकड़ से बाहर हो गया।''

एक बार डारविन के पिता ने उससे कहा था, ''तुम्हें कुत्तों का शिकार करने और चूहे पकड़ने के अलावा और किसी चीज की परवाह नहीं है। इस तरह तुम न केवल अपनी, बल्कि अपने पूरे खानदान की बदनामी करोगे।'' डारविन ने इस बारे में टिप्पणी की है, '' ......मैं जिन लोगों को जानता हूं, उनमें मेरे पिता सबसे उदार व्यक्ति थे और उनकी स्मृतियों से मैं हृदय की गहराइयों से प्रेम करता हूं। एक हद तक अनुचित लगने वाले इन शब्दों का प्रयोग उन्होंने क्रोध में किया होगा।''

डारविन अपने दादा इरास्मस डारविन (सन् 1731–1802) से प्रभावित थे। वैसे तो वह चिकित्सक थे, पर दार्शनिक, प्रकृतिवादी और कवि के रूप में भी उन्होंने ख्याति अर्जित की थी। उनकी पुस्तकें – 'जूनोमिया आर द लाज ऑफ आर्गेनिक लाइफ' और 'बोटेनिक गार्डन, आर लवर्स ऑफ द प्लांट्स' काफी मशहूर हुई थीं। इरास्मस ने विकास का एक सिद्धांत भी प्रस्तुत किया। उन्होंने 'ल्युनर सोसाइटी' की स्थापना में योगदान दिया। उस सोसाइटी के सदस्य 'ल्युनैटिक्स' कहे जाते थे। वे केवल पूर्णिमा के दिन मिलते थे, ताकि पूरी तरह खिली चांदनी में उनकी घोड़ा गाड़ियां आसानी से घर वापस लौट सकें। उसके सदस्यों में आविष्कारक जेम्स वाट (सन् 1736–1819), उद्योगपति मैथ्यू बाउल्टन (सन् 1728–1809), रसायनज्ञ जोसेफ प्रिस्टले (सन् 1733–1804), और चीनी–मिट्टी बर्तन–व्यवसायी वेज़्वुड शामिल थे। डारविन के नायक थे जार्ज़ेस कुवियर (सन् 1769–1832) और महान् जीव विज्ञानी कार्ल वॉन लिन्ने तथा कैरोलस लिन्नाइअस – (सन् 1707–1781)। लिन्नाइअस ने हजारों प्राणियों और पौधों का वर्गीकरण किया था। इसके अलावा

डारविन खोज के उद्देश्य से अधिकांश विश्व की यात्रा कर चुके अलेक्जेंडर वान हमबोल्ड्ट (सन् 1769–1859) से भी अभिभूत थे।

राबर्ट वारिंग डारविन

भू–विज्ञानी, जीव विज्ञान और वनस्पति विज्ञान जैसे विषयों में डारविन की रुचि जीवन के शुरूआती वर्षों में ही विकसित हो चुकी थी। उनकी थोड़ी–बहुत दिलचस्पी खगोल विज्ञान में भी थी। प्रकृति विज्ञान में डारविन की रुचि को उनके पिता अधिक महत्व नहीं देते थे। कारण यह था कि उन दिनों प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में रोजगार मिलने की अधिक संभावना नहीं थी। स्कूल में डारविन की उपलब्धियां संतोषजनक नहीं थीं। इसलिए उनके पिता ने उन्हें चिकित्सक के तौर पर प्रशिक्षित करने के लिए एडिनबर्ग विश्वविद्यालय भेज दिया। वहां औषधि विज्ञान के अध्ययन के साथ ही डारविन ने कीटों के संकलन और चिड़ियों को निहारने के अपने शौक को बरकरार रखा। उन्होंने प्रकृति में रुचि रखने वाले अपने से अधिक उम्र के कुछ मित्र भी बनाए। उनमें से जीव विज्ञान के एक प्रोफेसर राबर्ट एडमंड ग्रांट (सन् 1793–1874) उन्हें खेतों पर ले गये और एक प्रतिभाशाली चर्म प्रसाधक जान एडमोंस्टन ने उन्हें स्तनपायियों और चिड़ियों के नमूनों को संग्रह योग्य बनाना सिखाया।

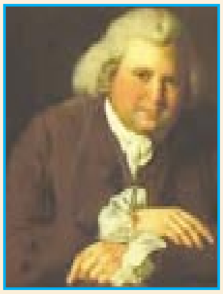

इरेस्मस डारविन

डारविन औषधि विज्ञान की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाए, उसे उन्हें एकाएक छोड़ना पड़ा। इसके बाद उनमें अपने पिता का सामना करने का साहस नहीं था, इसलिए उन्होंने वेज़वुड निवास में रहने वाले अपने मामा जोशिआ वेज़वुड, (द्वितीय) की शरण ली। वेज़वुड निवास को 'मैएर हाल' कहा जाता था, और वह श्रुस्बरी से 30 किमी. दूर स्टैफोर्डशायर में स्थित था। डारविन के मामा उन्हें काफी चाहते थे। वह डारविन को लेकर स्काटलैंड, आयरलैंड, लंदन और पेरिस की यात्रा पर चले गए। हालांकि डारविन के पिता को यह पसंद नहीं था।

डारविन के पिता ने जब देखा कि उनका बेटा चिकित्सक भी नहीं बन सका, तो उन्होंने अपने पुत्र को सन् 1827 में कैंब्रिज के क्राइस्ट कॉलेज में भेज दिया। उनकी सोच थी कि डारविन वहां धर्म–विज्ञान का अध्ययन करके पादरी बन जाएंगे। पर वहां भी डारविन अपना ध्यान अध्ययन में केंद्रित नहीं कर सके। वहां पर उनका जुड़ाव भू–विज्ञान के प्रोफेसर ऐडम सेड्विग और वनस्पति विज्ञानी पादरी जान हेंस्लो से हो गया। डारविन के कैरियर को दिशा देने में हेंस्लो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने कैंब्रिज के दिनों के बारे में डारविन ने कहा है, ''.....मेरा समय बरबाद हुआ, जहां तक अकादमिक शिक्षा का संबंध है, वह एडिनबर्ग तथा स्कूल में पूरी हो चुकी थी।'' डारविन के अनुसार, कैंब्रिज में अपनी पढ़ाई के दौरान उन्होंने केवल रेखागणित तथा 18वीं सदी के मशहूर धर्म–विज्ञानी विलियम पेले (सन् 1743–1805) के कामों में रुचि ली। डारविन ने पेले के प्रभावशाली तर्कों और अभिव्यक्ति की स्पष्ट शैली की प्रशंसा की है।

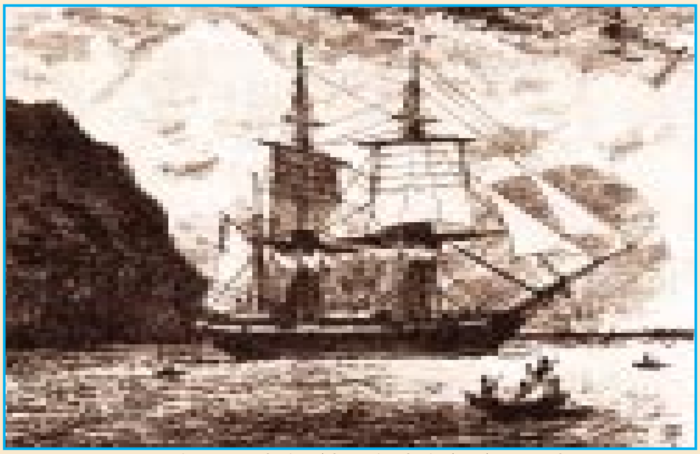

एच.एम.एस. बीगल का, दक्षिणी अमेरिका की दक्षिणी नोक के पास फ्यूजियन कबीले के लोगों द्वारा स्वागत

डारविन सन् 1831 में अध्ययन पूरा किए बिना ही कैंब्रिज से घर लौट आए। हैंस्लो से प्रोत्साहित होकर डारविन एक प्रखर प्रकृति विज्ञानी बनना चाहते थे पर उनके पास कोई औपचारिक डिग्री नहीं थी। तभी एक ऐसी अप्रत्याशित और नाटकीय घटना घटी, जिसने डारविन के जीवन और साथ ही वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया। डारविन को उनके प्रिय प्रोफेसर हैंस्लो से एक पत्र मिला। दरअसल हैंस्लो से अनुरोध किया गया था कि वह एच.एम.एस. बीगल नामक जहाज के कप्तान राबर्ट फिट्जर के लिए एक प्रकृति विज्ञानी ढूढ़ दें। हैंस्लो इस अभियान में स्वयं शामिल होना चाहते थे, पर वह अपने घर से दूर नहीं रह सकते थे, इसलिए उन्होंने अपने साले पादरी लिओनार्ड जेनिस से यह काम स्वीकार करने का अनुरोध किया। वह विधिवत शिक्षित प्रकृति विज्ञानी थे। लेकिन चर्च के दायित्वों से बंधे होने के कारण वह भी उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सके। उसके बाद हैंस्लो ने वह प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए डारविन को लिखा। 14 अगस्त 1831 को लिखे अपने पत्र में हैंस्लो ने डारविन को समझाया था कि कप्तान को केवल एक ''संग्राहक'' ही नहीं, बल्कि यात्रा के दौरान बुद्धिमान साथी की भूमिका निभा सकने वाले युवा प्रकृति विज्ञानी की तलाश हैं। उन्होंने आगे लिखा, ''मैं समझता हूं कि मेरी जानकारी में ऐसी परिस्थिति संभाल सकने लायक सबसे योग्य व्यक्ति तुम्हीं हो. ... मैं ऐसा तुम्हें परिपूर्ण प्रकृति विज्ञानी मान कर नहीं कह रहा हूं, बल्कि इसलिए कह रहा हूं कि तुम प्रकृति के इतिहास में उल्लेख की जाने योग्य किसी भी वस्तु का संग्रह, निरीक्षण एवं उल्लेख करने के लिए पूरी तरह सक्षम हो...... अपनी क्षमता के बारे में किसी विनम्र संदेह या आशंका को व्यक्त न करो, मैं तुम्हें आश्वस्त करता हूं कि जिस व्यक्ति की तलाश की जा रही है, वह तुम्ही हो।''

जार्जेस कुवियर

उल्लेखनीय है कि यद्यपि फिट्जराय को आमतौर पर डारविन के कप्तान के रूप में ही याद किया जाता है, पर उसने अपनी पहचान नाविक, खोजी, सर्वेक्षक, मानचित्रकार और मौसम–विज्ञानी के रूप में बनाई थी। वह न्यूजीलैंड का गवर्नर भी बना। उसकी पारिवारिक उपाधि 'फिल्मराय' की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा से हुई थी, जिसका अर्थ होता है – 'राजा का पुत्र'। राबर्ट फिट्जराय ने पोर्ट्समाउथ के नौपरिवहन कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उसने कई जहाजों पर काम किया। सन् 1828 में उसे एचएमएस बीगल की कमान सौंपी गई। उस जहाज को दक्षिण अमरीका का मानचित्र तैयार कनने के लिए भेजा जा रहा था। मानचित्रित किए जाने वाले स्थानों में पैंटेगोनिया, और टिएराडेल पुएगो भी शामिल थे। फिट्जराय को जब पहली बार बीगल की कमान सौंपी गई (सन् 1828–1830) तो दिएरा डेल फुएगो के आदिवासी रेड इंडियनों में उसकी गहरी रुचि हो गई। वह उनमें से चार युवा आदिवासियों को अपने साथ इंग्लैंड लेता आया। उनमें एक नौ साल की बालिका भी थी। उसका इरादा था कि वह उन्हें अंग्रेजी भाषा, ईसाइयत के सामान्य सिद्धांतों, बागवानी और साधारण औजारों के प्रयोग का प्रशिक्षण देकर उनके घर भेज दे। फिट्जराय ने लड़की का नाम फुएगिआ बास्केट और अन्य तीन लड़कों का नाम मार्क मिनिस्टर, बोट मेमोरी और जेमी बटन रखा था। बोट मेमोरी की मृत्यु इंग्लैंड पहुंचते ही हो गई। बचे तीन लोगों में जेमी बटन और फुएगिआ बास्केट ने अच्छी प्रगति की और प्रेस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इंग्लैंड में कुछ महीने रखने के बाद फिट्जराय उन्हें वापस इंग्लैंड भेजना चाहता था। लेकिन ब्रिटेन का नौ सेना विभाग इस परियोजना में पैसा लगाने को तैयार नहीं था। पर फिट्जराय अपने वादे पर अडिग था। अतः उसने एक साल की छुट्टी ले ली और जहाज किराए पर लेने के लिए पैसे का

इंतजाम किया। तभी उसके एक चाचा मदद के लिए आगे आए, और उन्होंने नौ सेना विभाग को बीगल की एक और सर्वेक्षण यात्रा के लिए धन देने को तैयार कर लिया। ब्रिटेन के नौ सेना विभाग ने पेंटागोनिया, टिएरा डेल फुएगो, चिली और पेरू के समुद्री किनारों का मानचित्र तैयार करने के लिए पांच साल की यात्रा पर भेजने के लिए सहमति दे दी। फिट्ज़राय जहाज पर अपने नाविक सहयोगियों के साथ किसी प्रकृति विज्ञानी, विशेषकर किसी युवक प्रकृति विज्ञानी को भी ले जाना चाहता था। उस समय इस तरह की यात्राओं पर किसी प्रकृति विज्ञानी को ले जाने की आम परंपरा थी। किसी प्रकृति विज्ञानी को साथ ले जाने का मुख्य उद्देश्य जहाज के कप्तान को किसी बुद्धिमान और सज्जन व्यक्ति का साथ उपलब्ध कराना होता था क्योंकि ब्रिटेन के जहाजी कप्तान अपने किराए के नाविकों से अलग–थलग ही रहते थे। प्रकृति विज्ञानी का पद अवैतनिक होता था।

'डाउन हाउस' डारविन–परिवार का डाउने स्थित घर

डारविन इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे पर उनके पिता इस पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि सहज विवेक रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस मूर्खतापूर्ण विचार से सहमत नहीं होगा। उनके पिता का मानना था कि उनका बेटा किसी कायदे के कैरियर की तैयारी करने की जिम्मेदारी से बचना चाहता है। उन्होंने डारविन को इस प्रस्ताव को भूलने और कैंब्रिज लौटकर पादरी की पढ़ाई पूरी करने की सलाह दी। इस हाल में युवा डारविन के पास इसके सिवा कोई विकल्प नहीं था कि वह हैंस्लो को उनका प्रस्ताव स्वीकार करने में अपनी असमर्थता के बारे में सूचित कर दें। पर डारविन ने अपने पिता की सहमति मिलने की आशा नहीं छोड़ी। इस आशा का एकमात्र आधार उनके पिता के ये शब्द थे, ''यदि तुम सहज विवेक रखने वाला एक भी ऐसा आदमी ढूंढ़ लाओ, जो तुम्हें जाने की सलाह दे, तो मैं तुम्हें इजाजत दे दूंगा।'' डारविन अपने मामा जोशिआ वेज़्वुड (द्वितीय) (डारविन उन्हें अंकल जोश कहा करते थे) के पास पहुंचे और उनसे अपने (डारविन के) पिता जी को मनाने के लिए कहा। वेज़्वुड ने डारविन की बातें गौर से सुनी और फिर उन्हें ऐसी यात्राओं से जुड़े खतरों के बारे में समझाया। उन्होंने देखा कि डारविन न केवल उन खतरों के बारे में जानते हैं, बल्कि उनका सामना करने के लिए भी तैयार हैं, तब वेज़्वुड ने इस मसले के बारे में डारविन के पिता से संपर्क करने का फैसला लिया। डारविन ने उन्हें अपने पिता द्वारा व्यक्त आपत्तियों की पूरी सूची दी। जोशिआ वेज़्वुड ने डारविन के पिता की हर आपत्ति का उत्तर देते हुए उन्हें एक पत्र लिखा। उनकी सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि यह समुद्री यात्रा पादरी के तौर पर डारविन के चरित्र के लिए असम्मानजनक होगी। वेज़्वुड ने इसका उत्तर देते हुए लिखा, ''हालांकि प्रकृति के इतिहास की खोज पेशेवर काम नहीं है, पर यह एक पादरी के लिए अत्यंत उपयुक्त है।'' डा. राबर्ट डारविन की इस आपत्ति कि, ''यह एक व्यर्थ काम होगा'', वेज़्वुड ने उत्तर दिया कि, ''चार्ल्स की व्यापक उत्सुकता को देखते

राबर्ट फिट्ज़राय

जार्जेस लोनिस लेरिक काम्टे डि बफन

केरोलस लिनेस या कार्लवान लिने

हुए कहा जा सकता है कि यह (यात्रा) उसे मनुष्यों और वस्तुओं को देखने का दुर्लभ अवसर उपलब्ध कराएगी।'' डारविन ने उस पत्र के साथ अलग से अपना लिखा एक नोट नत्थी किया। उसमें लिखा था कि वह इस विषय में अपने पिता के निर्णय को अंतिम मानेंगे, और ''इस विषय पर फिर चर्चा नहीं करेंगे।'' उत्तर की प्रतीक्षा करने की बजाय डारविन और वेज़्वुड द्वितीय डा. राबर्ट डारविन से मिलने के लिए श्रुस्बरी चले गए। अंततः डा. डारविन ने न केवल सहमति दे दी, बल्कि चार्ल्स डारविन की यात्रा का सारा खर्च उठाने के लिए भी तैयार हो गए।

बीगल ने 27 दिसंबर 1831 को यात्रा शुरू की। उस समय डारविन केवल 22 साल के थे। जहाज पर डारविन के रहने के लिए कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। उन्हें जहाज के कप्तान के केबिन में ही रहना पड़ता था, और उनके उपकरणों को रखने के लिए तो कोई कमरा उपलब्ध नहीं था। डारविन ने अपने रोज़नामचा में लिखा, ''कमरे का पूर्ण अभाव एक ऐसी बुराई थी, जिस पर किसी तरह काबू नहीं पाया जा सकता था।'' पूरी यात्रा के दौरान डारविन बीमार पड़ते रहे।

डारविन अपने साथ चार किताबें लेकर यात्रा में गए थे। ये थी – बाइबिल, मिल्टन की एक कृति, अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ड्ट की 'वेनेज़ुएला एवं ओरिनॉक्को घाटी की यात्रा का वृतांत' और लिएल की 'प्रिंसिपल ऑफ जिओलॉजी' का प्रथम खंड। लिएल की पुस्तक के अन्य दो खंड डारविन के पास यात्रा के दौरान हैंस्लो ने भिजवाए। यात्रा के दौरान किए गए अपने निरीक्षणों को डारविन हैंस्लो के पास लगातार भिजवाते रहते थे। इनमें से कई रिपोर्टों को हैंस्लो ने ''फिलासॉफिकल सोसाइटी ऑफ कैंब्रिज'' की बैठकों में पढ़ कर सुनाया।

अक्टूबर 1936 में इंग्लैंड लौटने से पहले बीगल ने कई क्षेत्रों की यात्रा की। यात्रा के दौरान वह अफ्रीका के दक्षिण केप से होकर गुजरा और पृथ्वी की जी परिक्रमा कर सफलतापूर्वक अपने प्रस्थान बिंदु पर लौट आया। अन्य स्थानों के अलावा जहाज ने केप वार्डे द्वीप समूह, ब्राजील, अर्जेंटिना और चिली की भी यात्रा की।

समुद्री यात्रा से लौटने के बाद डारविन ने ''जर्नल ऑफ रिसर्चेज'' पर काम करना शुरू कर दिया। वह सन् 1839 में प्रकाशित हुआ और उसे तत्काल सफलता मिली। अपने प्रथम ''साहित्य–शिशु'' की सफलता ने डारविन को अपनी अन्य किसी भी पुस्तक से अधिक प्रसन्नता दी।

स्वास्थ्य में लगातार गिरावट के कारण डारविन अपने ग्रामीण आवास पर चले गए। डाउने, केंट स्थित डारविन परिवार का घर ''डाउन हाउस' आज भी लंदन के दक्षिण में 23 कि.मी. दूर डाउने के एक गांव में स्थित है। वहां वह बागों, रक्षागृहों, कबूतरों और मुर्गों के बीच एक आत्मनिर्भर सज्जन ग्रामीण का जीवन जीते रहे। उसी दौरान उन्होंने रूपांतरणों और अंतर–प्रजनन पर व्यापक काम किया। अपने जीवन का अधिकांश काम उन्होंने डाउने में ही किया।

डारविन की लिखी किताबों की सूची इस लेख के अंत में दी हुई है। उनका भूविज्ञान संबंधी पहला प्रमुख काम था 'द स्ट्रक्चर एंड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ कोरल रीफ्स।'' यह सन् 1842 में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक में डारविन ने प्रवाल भित्तियों की संरचना और उनके निर्माण की प्रक्रिया का सिद्धांत प्रस्तुत किया था। डारविन का सिद्धांत इस बारे में उस समय प्रचलित सिद्धांत से काफी अलग था। फिर भी उनके सूक्ष्म निरीक्षण और सटीक चिंतन के कारण अधिकतर भू–विज्ञानियों ने उसे स्वीकार कर लिया। आमतौर पर भू–विज्ञानी आज भी उसी सिद्धांत को स्वीकार करते हैं।

प्रस्तर विज्ञान तथा जैव भू–विज्ञान संबंधी विभिन्न तथ्यों के निरीक्षण से डारविन ने महसूस किया कि जीवधारियों की प्रजातियों का अपरिवर्तनीय होना आवश्यक नहीं है। लेकिन उनके पास इस अनुभव को व्याख्यायित करने के लिए कोई सिद्धांत नहीं था। अतः उन्होंने भू–वैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने के लिए लिएल द्वारा अपनाए गए तरीके को आजमाने का फैसला किया। प्रचलित सिद्धांत के न होने की स्थिति में लिएल समस्त उपलब्ध आंकड़ों की सहायता से उन्हें सुलझाने की कोशिश करता था। उसकी सोच थी कि तथ्यों की प्रचुरता ही समस्या पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य डालेगी। डारविन ने जातियों के उत्परिवर्तन की समस्या को सुलझाने के लिए इसी पद्धति को अपनाया। इस तरीके को अपनाते हुए ही उन्होंने जुलाई 1837 में प्रकृति में, तथा घरेलू वातावरण में पाए जाने वाले पौधों तथा जंतुओं पर काम करना शुरू किया। डारविन सूचना के किसी भी स्रोत की उपेक्षा नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने व्यक्तिगत निरीक्षणों और प्रयोगों, अन्य जीव–विज्ञानियों के प्रकाशित लेखों, मालियों और प्रजनकों से हुई बातचीत तथा देश–विदेश के जीव विज्ञानियों से हुए पत्र व्यवहार – इन सभी स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग किया। समस्त एकत्र तथ्यों के विश्लेषण से डारविन ने महसूस किया कि पौधों एवं जंतुओं के उपयोगी प्रकारों को उत्पन्न करने में मनुष्य की सफलता प्रजनित किए जाने वाले प्राणियों के लिए इच्छित रूपांतरणों के चयन पर निर्भर करती है। लेकिन डारविन के पास यह संकेत देने वाला कोई सूत्र नहीं था कि चयन की यह प्रक्रिया प्रकृति में कैसे लागू होती है।

थामॅस राबर्ट माल्थस

लेकिन तभी उन्हें इस बारे में एक सिद्धांत सूझा, और उन्होंने उस पर काम करना शुरू किया। अक्टूबर 1838 में डारविन केवल आनंद के लिए 'माल्थस आन पापुलेशन' पढ़ रहे थे। थमस राबर्ट माल्थस (सन् 1766–1834) की लिखी यह किताब सबसे पहले सन् 1789 में प्रकाशित हुई थी। तब पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं था। पुस्तक का नाम था 'एन एसे आन द प्रिंसिपल ऑफ पापुलेशन'। पुस्तक जीव विज्ञान के बारे में नहीं थी। उसमें माल्थस ने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया था कि जनसंख्या रेखागणितीय ढंग से यानी 2,4,8,16.... के क्रम में बढ़ती है जब कि उसको जीवित रखने का साधन अंकगणितीय, यानी 1,2,3,4..... के क्रम में पढ़ते हैं। नतीजतन प्रकृति की चयनकारी शक्तियां, जैसे अत्यधिक भीड़भाड़, बीमारी, युद्ध गरीबी और पापाचार अक्षम लोगों को समाप्त कर देते हैं। केवल सक्षम लोग ही जीवित बचते हैं। डारविन ने माल्थस के इस विचार को और आगे बढ़ाया तथा प्रजातियों के प्राकृतिक चयन का सिद्धांत विकसित किया। इसी सिद्धांत को आमतौर पर ''योग्यतम की उत्तरजीविता'' का सिद्धांत कहा जाता है। ''योग्यतम की उत्तर जीविता'' – इस शब्दावली को आमतौर पर ''प्राकृतिक चयन'' के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन यह न केवल अधूरी, बल्कि भ्रामक भी है। ''उत्तरजीविता'' प्राकृतिक चयन का केवल एक घटक है, और अनेक जैविक समुदायों के संदर्भ में संभवतः इसका अधिक महत्व नहीं है। इसके अलावा ''सक्षम'' शब्द से शारीरिक क्षमता का आशय निकाल लिया जाता है, जबकि वास्तव में इसे विकास के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है, और इसका अर्थ है एक जीन समूह में किसी जीन रूपांतरण के प्रकार का औसत प्रजनन उत्पाद।

डारविन की मृत्यु से एक वर्ष पूर्व, डारविन और उनके केंचुओं का एक कार्टून, जो पंच पत्रिका में सन् 1881 में प्रकाशित हुआ था

प्राकृतिक चयन का सिद्धांत बताता है कि कौन सी शक्तियां विकास की दिशा का चयन करती हैं। अस्तित्व कायम रखने की प्रतियोगिता में जो प्रजातियां जीवित रह जाती हैं, वे ही अगली पीढ़ी का प्रजनन करती हैं। दरअसल जीवधारी के आस–पास का पर्यावरण ही तय करता है कि कौन सा प्राणी जीवित रहकर अपनी नस्ल को आगे बढ़ाएगा और कौन संतति वृद्धि के लिए जीवित नहीं रह पाएगा।

अल्फ्रेड रसेल वैलेस

माल्थस के काम पर टिप्पणी करते हुए डारविन ने लिखा है, ''व्यवस्थित ढंग से अपनी छानबीन शुरू करने के 15 महीने बाद की बात है कि अक्टूबर 1938 में मैं केवल आनंद के लिए ''माल्थस आन पापुलेशन'' पढ़ रहा था, और जंतुओं तथा पौधों का लंबे समय से निरीक्षण करते रहने के कारण मैं अस्तित्व के लिए संघर्ष के सिद्धांत' का महत्व पहचानने के लिए दिमागी तौर पर पूरी तरह तैयार था, इस सिद्धांत ने मुझे तत्काल एक बात सुझाई कि इन परिस्थितियों में अनुकूल रूपांतरण सुरक्षित रहेंगे, और प्रतिकूल रूपांतरण नष्ट हो जाएंगे। इसका परिणाम एक नई प्रजाति के निर्माण के रूप में सामने आएगा। इस तरह, मैंने अंततः काम करने के लिए एक सिद्धांत प्राप्त कर लिया.....''

इसके बावजूद डारविन को अपने सिद्धांत का पहला खाका लिखने में चार साल लग गए। कारण यह था कि उन्हें काफी मात्रा में और आंकड़े जुटाने पड़े। सन् 1842 में डारविन ने पेंसिल से लिखा 35 पेज का एक मसौदा तैयार किया। सन् 1844 तक इस मसौदे के पृष्ठों की संख्या बढ़ाकर 230 हो गई। सन् 1856 के प्रारंभ में लिएल की सलाह पर डारविन ने प्रजातियों की उत्पत्ति के बारे में अपने विचारों का पूरा ब्योरा तैयार करने के लिए अपना काम और बड़े पैमाने पर करने का निश्चय किया। लेकिन डारविन ने अभी आधा ही काम किया था कि एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उन्हें अपने काम को पहले ही प्रकाशित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अल्फ्रेड रसेल वैलेस (सन् 1823–1913) ने डारविन को एक छोटा सा लेख लिख कर भेजा। लेख उपजातियों के अपने मूल प्रकार से अनिश्चितकालीन विलगाव (''टेंडेंसीज आफ वैराइटीज टू डिपार्ट इनडेफिनिटली फ्राम द ओरिजिनल टाइप'') के बारे में था। वैलेस ने डारविन से अनुरोध किया था कि यदि वह उचित समझें तो उस लेख को लिएल के पास टिप्पणी के लिए भेज दें। डारविन ने उस लेख को बेहद पसंद किया। उन्हें उसमें अपना ही सिद्धांत नजर आया। डारविन ने वैलेस का लेख अपने एक पत्र के साथ लिएल के पास भेजा। उन्होंने लिखा : ''आपके ये शब्द पूरी तरह सच साबित हुए कि मुझे बीच ही में रोक लिया जाएगा। अगर वैलेस के पास सन् 1842 में लिखा मेरा प्रारंभिक मसौदा मौजूद होता तो वह इसका इससे (वैलेस के भेजे लेख से) बेहतर संक्षिप्त रूप नहीं तैयार कर सकते थे।'' एक बार तो डारविन ने वैलेस के पक्ष में अपनी कृति का प्रकाशन स्थगित करने का निर्णय ले लिया। लेकिन लिएल और जोसेफ हूकर (सन् 1817–1911) प्रजातियों के रूपांतरण के बारे में डारविन के काम से सालों से परिचित थे। लिएल ने सन् 1842 में डारविन का लिखा प्रारूप पढ़ा था। इसलिए लिएल और हूकर ने डारविन को सलाह दी कि वह अपने सिद्धांत का सारांश लिखें और उसे वैलेस के लेख के साथ ''द जर्नल आफ द लिनीयन सोसाइटी''

में प्रकाशित कराएं। ये लेख सन् 1859 में उस जर्नल में प्रकाशित हुए। साथ ही सितंबर 1857 में महान् अमेरिकी वनस्पति विज्ञानी असा ग्रे (सन् 1820–88) को लिखे गए डारविन के एक पत्र का अंश भी प्रकाशित हुआ। उस पत्र में डारविन ने प्राकृतिक चयन और प्रजातियों की उत्पत्ति के बारे में अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया था।

अपनी जीवनी में डारविन ने लिखा है, ''सन् 1856 के प्रारंभ में लिएल ने मुझे अपने विचारों को विस्तार से लिखने की सलाह दी, मैंने तुरंत उस पर अमल किया, और मेरी कृति 'ओरिजिन ऑफ स्पीसीज़' बाद में जिस आकार में प्रकाशित हुई, उससे तीन–चार गुना बड़ी रचना तैयार करने में लग गए। ....इसके बावजूद यह मेरे द्वारा संकलित सामग्री का सार ही था। उस स्तर पर मैं आधा ही काम कर सका था कि सन् 1858 की गर्मियों में मेरी योजना समय से काफी पहले ही धराशायी हो गई। मलय द्वीप समूह में रह रहे श्री वैलेस ने मेरे पास अपना ''आन द टेंडेंसी ऑफ वैराइटीज टू डिपार्ट इनडेफिनिटली फ्राम द ओरिजिनल टाइप'' शीर्षक वाला एक लेख भेजा। इस लेख (जो मुझे 18 जून को मिला) में पूरी तरह मेरा ही सिद्धांत निहित था। श्री वैलेस ने इच्छा व्यक्त की थी कि यदि मैं उचित समझूं तो उसे पढ़ने के लिए लिएल के पास भेज दूं। मैंने जिन परिस्थितियों में 5 सितंबर, 1857 को असा ग्रे को लिखे पत्र के साथ अपनी पांडुलिपि के सार को वैलेंस के लेख के साथ प्रकाशित करने की अनुमति दी थी, जर्नल ऑफ द लिनीयन सोसाइटी, 1858 के 45वें पृष्ठ पर उनका उल्लेख है। पहले मैं अपनी सहमति देने के लिए बिल्कुल इच्छुक नहीं था, क्योंकि मेरा विचार था कि श्री वैलेस इसे अनुचित मानेंगे, उस समय मैं नहीं जानता था कि वे कितने उदार और सज्जन स्वभाव के हैं।''

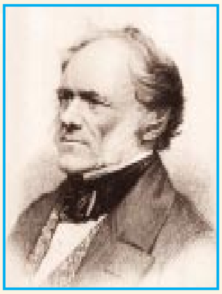
चार्ल्स लिएल

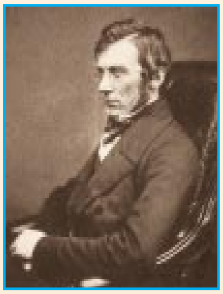
जोसेफ डाल्टन हुकर

उसके बाद लिएल और हुकर ने डारविन को प्रजातियों के रूपांतरण पर जल्दी ही पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए प्रेरित किया। सलाह के अनुसार ही, डारविन ने सन् 1856 में लिखी जा रही पुस्तक के आकार को संक्षिप्त करके एक–तिहाई या एक–चौथाई कर दिया। इस तरह तैयार की गई 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' अंततः नवंबर 1859 में प्रकाशित हुई।

पांडुलिपि का मूल शीर्षक था, ''ऐन ऐबस्ट्रैक्ट ऑफ ऐन एसे आन द ओरिजिन ऑफ स्पेसीज एंड वेरायटीज़ थ्रू नेचुरल सेलेक्शन।'' लेकिन उनके प्रकाशक जान मुरे ने डारविन को इस पुस्तक का नाम 'आन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' रखने के लिए प्रेरित किया, लेकिन डारविन ने 'बाई मींस ऑफ नेचुरल सेलक्शन' शब्दों को उपशीर्षक के तौर पर देने के लिए जोर दिया। डारविन ने शीर्षक वाले पृष्ठ पर इन शब्दों को भी जोड़ दिया – ऑर द प्रिजर्वेशन ऑफ फेवर्ड रेसेस इन द स्ट्रगल फार लाइफ। प्रथम संस्करण में प्रकाशित पुस्तक की सभी 1250 प्रतियां पहले दिन ही बिक गईं। 'ओरिजिन' की सफलता पर टिप्पणी करते हुए डारविन ने लिखा :

मैं समझता हूं कि ओरिजिन की सफलता की वजह काफी हद तक यह है कि मैंने पहले दो संक्षिप्त खाके तैयार किए थे, और फिर अंतिम तौर पर एक काफी बड़ी पांडुलिपि का सार–संक्षेप तैयार किया था, जो स्वयं संक्षेपित रूप ही थी। इस तरह मैं अधिक प्रभावकारी तथ्यों और निष्कर्षों का चयन कर सका। कई सालों से मैं एक अच्छे नियम का भी पालन करता आ रहा हूं। वह यह है कि जब कभी कोई ऐसा प्रकाशित तथ्य, कोई नया निरीक्षण, या विचार मेरी जानकारी में आता है, जो मेरे सामान्य निष्कर्षों के विरुद्ध होता है तो मैं बिना चूके उसको तत्काल नोट कर लेता हूं क्योंकि मेरा अनुभव है कि अनुकूल तथ्यों, निरीक्षणों और विचारों की तुलना में प्रतिकूल तथ्य निरीक्षण और विचार स्मृति से अपेक्षाकृत अधिक आसानी से गायब हो जाते हैं; अपनी इस आदत के कारण मेरे विचारों के विरुद्ध व्यक्त काफी कम आपत्तियां मुझसे अनदेखी या अनुत्तरित रही हैं।

लोक–पुरुष के रूप में, 'वेनिटी फेयर' (सितम्बर 30, 1871) पत्रिका में प्रकाशित डारविन का कार्टून

डारविन ने अपनी ''ओरिजिन ऑफ स्पेसीज़'' का उल्लेख हमेशा सारांश के रूप में किया है। इसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है : ''जिस सारांश को मैं अब प्रकाशित कर रहा हूं, वह अवश्य ही दोषपूर्ण होगा। मैं अपने कई कथनों के पक्ष में संदर्भों या प्रमाणों का उल्लेख नहीं कर सका हूं, अतः मुझे पाठकों से उम्मीद रखनी चाहिए कि वे मेरी सत्यता पर कुछ विश्वास करेंगे यद्यपि अपनी समझ से मैं हमेशा केवल श्रेष्ठ स्तरीय प्रमाणों पर विश्वास करने के बारे में सावधान रहा हूं तो भी मैं यहां केवल अपने सामान्य निष्कर्षों को ही प्रस्तुत कर सका हूं, और साथ में दृष्टांतों में कुछ तथ्यों का उल्लेख है। लेकिन मेरी समझ से अधिकांश मामलों में इतना पर्याप्त है। वैसे इसके बाद सभी तथ्यों और मेरे निष्कर्षों को विस्तार से प्रकाशित करने की अनिवार्यता के बारे में मुझसे अधिक संवेदनशील और कोई नहीं होग, तथा भविष्य में किसी कृति में मैं ऐसा करना चाहूंगा। मैं इस संबंध में पूरी तरह सचेत हूं कि इस खंड में शायद ही ऐसे किसी प्रसंग की चर्चा की गई है, जिस संबंध में मेरे निष्कर्षों के ठीक विपरीत निष्कर्षों की ओर बढ़ने पर उसके समर्थन में तथ्य न प्रस्तुत किए जा सकें। सही परिणाम तभी प्राप्त किया जा सकता है जब दोनो पक्षों के प्रत्येक प्रश्न से संबंधित तथ्यों और तर्कों को सविस्तार प्रस्तुत किया जाए, फिर उनका आकलन किया जाए, और संभवतः यहां ऐसा नहीं किया जा सका है।"

डारविन को अमूमन सामान्य वंश परंपरा की परिकल्पना तथा विकास संबंधी प्रक्रिया प्रस्तुत करने के बारे में जाना जाता था। डारविन का सिद्धांत अब मात्र एक सिद्धांत नहीं रह गया है – डारविन के बाद उनके सिद्धांत से संबंधित प्रमाण विशाल मात्रा में जुटाए जा चुके हैं। कहा जा सकता है कि कापर्निकस, गैलीलियो और न्यूटन की तरह डारविन ने भी नियमों – यानी प्रकृति के नियमों को खोज निकाला। डारविन के अनुसार, जीवन का अस्तित्व में आना और कायम रहना प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया पर निर्भर है। डारविन के सिद्धांत के अनुसार जनसंख्या में निरंतर नए रुपांतरणों का प्रवेश होता रहता है। ऐसे कुछ रुपांतरण निष्क्रिय हो सकते हैं पर कुछ रुपांतरण अपना अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष में जीवधारी को सहायता देते हैं, अथवा बाधा पहुंचाते हैं। लेकिन डारविन आनुवंशिकता पद्धति को नहीं जानते थे।

आज हम जानते हैं कि आनुवंशिकता की वास्तविक पद्धति ग्रेगर मेंडेल ने मटर के वर्ण संकर पौधों पर प्रयोग करके खोजी। मेंडेल ने अपना लेख डाक से डारविन के पास भेजा भी था। लेकिन डारविन ने इसे कभी नहीं खोला।

विकास का सिद्धांत डारविन के लिए नया नहीं था। फ्रांसिस बेकन (सन् 1561–1626) ने अपनी पुस्तक "नोवम आर्गेनम" (1620) में प्रजातियों के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्राकृतिक ढंग से रुपांतरण के तरीके का उल्लेख किया था। बेकन ने निष्कर्ष निकाला था कि पौधों और जंतुओं के प्रजनक ऐसे रुपांतरणों का उपयोग करके "कई विलक्षण और आसाधरण" परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। जर्मन गणितज्ञ गाटफ्राइड विलहेल्म लिब्निज़ (सन् 1646–1716) ने अनुमान लगाया था कि प्रजाति पर्यावरण भिन्न–भिन्न होने के कारण ही प्रजातियों में परिवर्तन आ गया है। लिब्निज् के निष्कर्ष उसके जीवाष्म संबंधी अध्ययनों और लुप्त हो चुके एमोनाइटों तथा मौटिलस जैसी जीवित प्रजातियों के संभावित संबंधों पर आधारित थे। आधुनिक जीव विज्ञान के संदर्भ में विकास शब्द सबसे पहले राबर्ट जैनेसन द्वारा सन् 1826 में इस्तेमाल किया गया था। 18 वीं सदी में जार्जेट लुइस लेक्रेक, काम्टे डे बफन (सन् 1707–88) ने राय जाहिर की कि संभवतः उत्तरी अमेरिकी गवल (एक पशु) बैलों की एक प्रजाति के वंशज हैं। वह प्रजाति वहां

बाहर से आई थी। डारविन के दादा इरास्मस डारविन भी विकासवाद का महत्व स्वीकार करते थे। लेकिन उनके सोचने का ढंग गलत था। वह मानते थे कि किसी प्रजाति के अलग–अलग सदस्य अपने जीवन काल में ही विभिन्न विशेषताएं विकसित कर लेते हैं और इस प्रकार विकसित उन्नत विशेषताएं उनकी अगली पीढ़ियों में पहुंच जाती है।

सन् 1809 में जीन–बैपटिस्ट लैमार्क (सन् 1744–1829) ने विकास का एक नया सिद्धांत प्रस्तावित किया। उसका मानना था कि प्रजातियों का निर्जीव स्रोतों से निरंतर विकास हुआ है। आरम्भ में ये प्रजातियां अति आदिम रुप में थी, पर उनमें निहित किसी प्रवृति के कारण उनमें जटिलता आती गई। इसके अलावा लैमार्क ने यह विचार भी प्रस्तुत किया कि जीवधारी में अपने से अनुकूलन के लिए विकसित विशेषताएं उसकी अगली पीढ़ियों में पहुंच सकती हैं। उदाहरण के तौर पर लैमार्क का विचार था कि जिराफों की मूल नस्ल पेड़ों की ऊंचाई पर स्थित टहनियों को खाने के लिए अपनी गर्दन ऊपर की और खींचती थी, इसी कारण उनकी बाद की नस्लों की गर्दन लंबी हो गई। लैमार्क का यह भी मानना था कि प्रजातियां कभी लुप्त नहीं होती, हालांकि उनके नए रुप विकसित हो सकते हैं। हालांकि लैमार्क के विचार गलत साबित हुए। अनेक वैज्ञानिकों के निष्कर्षों में 'विकास' और प्रजातियों द्वारा स्वयं को पर्यावरण के उपयुक्त बनाने के लिए 'अनुकूलन' की अवधारणा अव्यक्त रुप से शामिल है। डारविन ने विकास की प्रक्रिया के घटित होने की व्याख्या, प्राकृतिक चयन के सिद्धांत के रुप में उपलब्ध कराई।

जॉन बेप्टिस्ट लेर्माक

विकास के सिद्धांत के कारण कई रुढ़िवादी और चर्च से संबंधित लोग डारविन के शत्रु बन गए। दरअसल उनके इस सिद्धांत में निर्माण और ईश्वरीय निर्देश' संबंधी धार्मिक विश्वास पर चोट की थी। अखबारों में डारविन के बंदरनुमा कार्टून छपे, लेखों और नसीहतों की बाढ़ सी आ गई। वैज्ञानिकों में उनके प्रमुख विरोधी थे आक्सफोर्ड के प्रसिद्ध भू–विज्ञानी रिचर्ड ओवेंस, हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमरीका) के लुइस अगासीज़, और कैंब्रिज के पुरानी विचार–परंपरा समर्थक भू–विज्ञानी ऐडम सेड्ज़विक। डारविन अपने सिद्धांत के उस उन्माद भरे विरोध का सामना करने की स्थिति में नहीं थे। एक तो वह लगातार बीमार रहते थे, दूसरे वह अपनी पुत्री एनी की मौत के सदमें से कभी नहीं उभर पाए।

उनके सिद्धांत का बचाव करने का बीड़ा थामस हेनरी हक्सले (सन् 1825–95) ने उठाया। वह एक प्रतिभाशाली जीव विज्ञानी थे। डारविन के सिद्धांतों का प्रबल समर्थक होने के कारण "उन्हें डारविन का बुलडाग" कहा जाने लगा। हक्सले ने 30 जून, 1860 को हुई मशहूर "आक्सफोर्ड बहस"में अपनी भूमिका बड़ी कुशलता से निभाई। वहां उनकी मुठभेड़ आक्सफोर्ड के प्रभावशाली बिशप सैमुएल बिल्वरफोर्स से हुई। हक्सले और विल्बरफोर्स के अलावा मंच पर मौजूद लोगों में डारविन के पुराने शिक्षक और विकासवाद विरोधी जे.एस. हक्सले, उनके मित्र जोसेफ हूकर और जॉन लूब्बक, न्यूयार्क विश्वविद्यालय के जॉन ड्रेपर और महारानी के चिकित्सक और रायल सोसाइटी के अध्यक्ष सर बेंजामिन ब्रोडी मौजूद थे। इस वाद–विवाद का आयोजन विश्वविद्यालय के म्युजियम में किया गया था। बहस के दौरान लोगों ने हक्सले का मखौल उड़ाने के बजाय नए सिद्धांतों को काफी रुचि से सुना।

डारविन और उनकी पत्नी एम्मा (बाँए)

हक्सले के अलावा डारविन के प्रमुख समर्थकों में चार्ल्स लिएल और जेम्स हूकर शामिल थे। हालांकि लिएल डारविन को सही मानते थे, पर उन्होंने घोषित तौर पर यह सिद्धांत सन् 1868 में, यानी 71 वर्ष की आयु में स्वीकार किया। उससे पहले वह अपने लेखों और वक्तव्यों में विकासवाद का खुलकर समर्थन करने से बचते रहे।

"ओरिजिन आफ स्पीसशीज़" के प्रकाशन के बाद हुई बहस से वैज्ञानिकों के बीच डारविन के सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति मिली, पर उनके जीवन काल में वह पूरी तरह स्थापित नहीं हो सका। इसका मुख्य कारण यह था कि वह इस बात की व्याख्या नहीं कर सके कि विशिष्टताएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कैसे पहुंचती हैं, और एक ही प्रजाति के दो सदस्यों में भिन्नता क्यों होती है। एक ही जनक के संतानों में भी भिन्नता पाई जाती है। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि "ओरिजिन आफ स्पीशीज़" के बाद के संशोधित संस्करणों में "प्राकृतिक चयन" के सिद्धांत से डारविन खुद पीछे हट गये। "डिसेंट ऑफ मैन" के प्रथम संस्करण में उन्होंने लिखा, "ओरिजिन आफ स्पीशीज़" के प्रारंभिक संस्करणों में मैंने संभवत: "प्राकृतिक चयन, अथवा योग्यतम की उत्तरजीविता" के सिद्धांत पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है। " डारविन के कदम पीछे हटाने का पहला कारण यह था कि वह अपने प्राकृतिक चयन के सिद्धांत के महत्वपूर्ण घटक "रुपांतरण" की व्याख्या नहीं कर सके। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह था कि विकास के लिए समय का अत्यंत व्यापक फलक चाहिए, पर 19वीं सदी के उत्तरार्ध में वैज्ञानिक सूर्य को अरबों सालों तक दीप्त रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा देने वाली प्रक्रिया से अनजान थे, जबकि पृथ्वी पर छोटे–छोटे चरणों में जीवन के विविध रुपों के विकसित होने के लिए ऐसा होना जरुरी है। बीसवीं सदी के वैज्ञानिकों ने यह समस्या हल कर ली। उनके अनुसार, सूर्य साढ़े चार अरब सालों से लगभग समान रुप से तप रहा है, अत: इससे कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती कि "प्राकृतिक चयन" के माध्यम से विकास के लिए विशाल समय–फलक चाहिए। विकास–प्रक्रिया के लिए इतना समय आवश्यकता से अधिक है। अब हम जानते हैं कि सूर्य में ऊर्जा नाभिकीय प्रक्रिया से उत्पन्न होती है। बीसवीं सदी में वैज्ञानिकों ने आनुवंशिकता और जनक से संतति तक पहुंचने की प्रक्रिया के बारे में भी समझ विकसित कर ली है। पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि इस दिशा में काम की शुरुआत मेंडेल ने की थी।

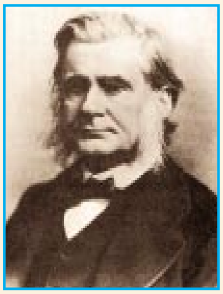

थॉमस हैनरी हक्सले

बीसवीं सदी के पांचवे दशक तक प्राकृतिक चयन का सिद्धांत ठीक उसी रुप में पूरी तरह स्थापित हो चुका था, जैसे उसकी चर्चा "ओरिजिन आफ स्पीशीज़" के प्रथम संस्करण में की गई थी। हालांकि विकास के विभिन्न आयामों की क्रियाशीलता पद्धति के बारे में बहस जारी है। उदाहरण के तौर पर संबंध–ढांचे के बारे में पूरा विवरण अब तक नहीं मिल सका है।

विकास को जीव–विज्ञान की आधारशिला माना जाता है। वैसे विकास के सिद्धांत के अल्पज्ञान, अथवा बिना ज्ञान के भी जीव विज्ञान में अनुसंधान किया जा सकता है, पर तब जीव विज्ञान असम्बद्ध क्षेत्रों का जमावड़ा लगेगा। चूंकि विकास–संबंधी व्याख्या के दायरे में जीव–विज्ञान के सभी क्षेत्र आते हैं, अत: वह उन्हें सिद्धांत की एक ही छतरी में समेट लेती है।

विकास–प्रक्रिया का सार इन तीन वाक्यों में समेटा जा सकता है :– जीन (आनुवंशिक इकाई) उत्परिवर्तित होते हैं; प्रकृति प्रजाति के कुछ खास सदस्यों का चयन करती है; विकास के लिए आनुवंशिक रुपांतरण आवश्यक है। सतत विकास के लिए आनुवंशिक रुपांतरण का सृजन या बढ़ावा देने वाली, और उसे घटाने वाली प्रक्रिया का होना आवश्यक है। उत्परिवर्तन किसी जीन में होने वाला परिवर्तन है। ये परिवर्तन ही नए आनुवंशिक रुपांतरण के स्रोत हैं। इन रुपांतरणों पर प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया लागू होती है। यह प्रक्रिया किसी जीन समूह की

उपयुक्तता को बढ़ावा देने वाली विशेषताओं, या व्यवहारों को प्रोत्साहित करती है। प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया आनुवंशिक रुपांतरणों को स्वयं प्रकट नहीं करती। यह प्रक्रिया संयोगवश अस्तित्व में आ चुके रुपांतरणों में से लाभदायक रुपांतरणों

गैलापेगस द्वीप के मैदान में डारविन एक हाथी – कछुएं की गति का मापन करते हुए

का चयन कर उन्हें प्रोत्साहित भर करती है। वह उन्हें प्रकट करने में कोई योगदान नहीं देती। प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के लागू होने की संभावना चुने जाने वाले आनुवंशिक रुपांतरण के प्रकट होने से काफी पहले ही जन्म ले सकती है। प्रक्रिया की कोई भविष्य–दृष्टि नहीं होती। यह वर्तमान पर्यावरण से अनुकूलन करने में जीव को सहयोग भर देती है। जीव में किसी संरचना या व्यवहार का

डारविन के समय में ऐसे कार्टून अनगिनत पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इस कार्टून में गोरिल्ला, दाढ़ी वाले डारविन को संकेत करके खिल्ली उडातें हुए कहता है, 'यह आदमी अपने को मेरी वंशावली का बताता है। यह कहता है कि मैं तुम्हारा ही एक वंशज हूँ।' इस पर सोसायटी फार दि प्रीवेन्शन ऑफ क्रुएलिटी टु एनीमल्स के जनक मिं. बर्ग कहते हैं, ''अब मिस्टर डारविन, तुम इसका अपमान कैसे कर सकोगे?''

विकास इसलिए नहीं होता कि वह उसके भविष्य के लिए उपयोगी होगा। वह अपने विकास के हर चरण में पर्यावरण से अनुकूलन करता है। पर्यावरण में परिवर्तन होने पर प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया नई विशेषताओं का चुनाव कर सकती है।

लंबी बीमारी के बाद 19 अप्रैल, 1882 को डारविन का निधन हो गया। ब्रिटेन की संसद के कुछ सदस्यों के सुझाव पर उनके शव को वेस्टमिनिस्टर एबे में दफनाए जाने का सम्मान मिला। इस स्थान पर ब्रिटेन के सम्राटों और विशिष्ट राजनेताओं को दफनाया जाता है।

इस लेख का अंत डारविन के बारे में जुलियन हक्सले के इस कथन से करना उचित होगा, "डारविन के काम ने .... जीवन संसार को प्राकृतिक नियमों के अधिकार क्षेत्र में ला खड़ा किया। अब यह सोचना न तो आवश्यक, और न ही संभव रह गया कि प्रत्येक जंतु या वनस्पति को विशेष रुप से रचा गया है; या आहार जुटाने तथा शत्रु से बचाने वाले उनके सुंदर एवं उत्तम अवयव किसी आलौकिक शक्ति की सोच की उपज है, अथवा विकास प्रक्रिया के पीछे कोई सोचा–समझा उद्देश्य है। प्राकृतिक चयन का सिद्धांत यदि लागू है तो पशुओं, पौधों और स्वयं मनुष्य का वर्तमान रुप भी अंत और स्वचलित प्राकृतिक कारणों की उपज है, ये पर्वतों को आकार देने वाले तथा पृथ्वी और अन्य ग्रहों को सूर्य की वलयाकार परिक्रमा कराने वाले कारणों जितने ही अंध और स्वचलित है। अस्तित्व के लिए अंधा संघर्ष आनुवंशिकता की अंध प्रक्रिया का परिणाम स्वत: ही सर्वश्रेष्ठ ढंग से अनुकूलित प्रकारों के चयन, और प्रगति की दिशा में प्राणी समुदाय के सतत विकास के रुप में सामने आता है।

डारविन के काम के कारण हममें मनुष्य और अपनी वर्तमान सभ्यता को अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक प्रकाश में देख सकें। मनुष्य विकास की संभावना से रहित अंतिम रुप से रच दिया गया उत्पाद नहीं है। उसका एक लंबा इतिहास है, और यह इतिहास पतन का नहीं, बल्कि उत्थान का है। उसके लिए प्रगतिशील विकास के दरवाजे अब भी खुले हुए हैं। विकास के सिद्धांत से हम धैर्य रखना भी सीखते हैं। पृथ्वी पर मनुष्य का अस्तित्व लाखों सालों से है और जीवन के विकास का क्रम अरबों सालों से चल रहा है, लिखित इतिहास के कुछ हजार साल उसकी तुलना में कुछ नहीं है। और हम खगोलज्ञों के इस आश्वासन के भरोसे धैर्य बनाए रख सकते हैं कि आने वाले अरबों सालों में विकास की प्रक्रिया नया प्रकाश देखेगी।

चार्ल्स डारविन की लिखी पुस्तकें :

1. वायज आफ द बीगल आर जर्नल आफ रिसर्चेज, लंदन : 1839
2. स्ट्रक्चर एंड डिस्ट्रिब्युशन आफ कोरल रीफ्स, लंदन : 1842
3. जिओलॉजिकल आब्जर्वेशन आन वॉल्केनिक आइलैंड, लंदन
4. जिओलॉजिकल आब्जर्वेशन आन साउथ अमरीका लंदन, 1846
5. आन द ओरिजिन आफ स्पेसीज बाइ मींस आफ नेचुरल सेलेक्शन, लंदन, 1859
6. द वैरियस कंट्राइवेंसेज बाइ हिवच आर्किडस आर फर्टिलाइज्ड बाइ इंसेकटस एंड आन द गुड इफेक्टस आफ इंटरक्रासिंग लंदन, 1862
7. द वैरिएशन आफ प्लांटस एंड एनिमक्स अंडर डोमेस्टिकेशन, लंदन 1868
8. डिसेंट आफ मैन एंड सेलेक्शन आन रिलेशन टु सेक्स, लंदन 1871
9. द एक्सप्रेशन आफ द इमोशन इन मैन एंड एनीमल्स, लंदन, 1872
10. इंसेक्टिवोरस प्लांट्स, लंदन, 1875
11. क्लाइंबिंग प्लांट्स, लंदन, 1875
12. द इफेक्टस आफ क्रास एंड सेल्फ फर्टिलाइजेशन इन वेजेटेबिल किंगडम, लंदन, 1876
13. डिफरेंट फार्म्स आफ फ्लावर्स आन प्लांट्स आफ द सेम स्पेसीज, लंदन, 1880
14. द पावर आफ मुवमेंट्स इन प्लांट्स, लंदन, 1880
15. द फार्मेशन आफ वेजेटेबल मोल्ड थ्रू द एक्शन आफ वर्म्स विद आब्जर्वेशन आन देयर हैबिट्स, लंदन, 1881
16. ऑटोबाइग्राफी आफ चार्ल्स डारविन (नोरा बार्लोड) न्यूयार्क, 1958

शेष पृष्ठ 14 पर जारी

सार्वत्रिक भौतिक नियतांक तथा गुच्छ परिकल्पना

❒ प्रदीप कुमार मुखर्जी

भौतिकी में कुछ ऐसे नियतांक हैं जिन्हें सार्वत्रिक नियतांक होने का दर्जा हासिल है। इनमें से हर नियतांक भौतिकी की किसी न किसी विशिष्ट शाखा से जुड़ा है। उदाहरण के लिए, गुरुत्वीय नियतांक G यांत्रिकी में गुरुत्व संबंधी परिकलनों में आता है। इसी तरह आवोगाड्रो का नियतांक N_A तथा बोल्ट्जमान का नियतांक K तापीय तथा आण्विक भौतिकी की गणनाओं में आते हैं। आपेक्षिकता तथा प्रकाश–संचरण के साथ प्रकाश का (निर्वात में) वेग संबंधित होता है। प्लांक का नियतांक h (विकिरण तथा ऊर्जा तथा उसकी आवृत्ति का अनुपात) क्वांटम यांत्रिकी में बहुत महत्व रखता है तथा यह कणों की तरंगसदृश प्रकृति एवं विकिरण के काजिकामय गुणधर्मों सं संबद्ध होता है। अवपरमाणिक कणों को अपना विषय क्षेत्र मानने वाले आधुनिक तथा मूलकण भौतिकी के साथ न्यूक्लिऑन (प्रोटॉन और न्यूट्रॉन) का द्रव्यमान m_n, इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान m_e तथा इलेक्ट्रॉन–आवेश e संबंधित होते हैं।

आर्नल्ड सॉमरफिल्ड

भौतिकी के नियतांकों को आपस में इस तरह से लिया जा सकता है कि वे प्राकृतिक (या अविम) संख्याओं का गठन करें जो हमारे मापन–मात्रकों पर अनाश्रित हों। उदाहरणस्वरूप, न्यूक्लिऑन तथा इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमानों का अनुपात (m_n/m_e) एक अविम संख्या है :

$$m_n/m_e=1836$$

नियतांक α इसी तरह के नियतांकों का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करता है :

$$\alpha = ke^2/\hbar c \ (k=1/4\ \pi\varepsilon_o,\ \hbar=h/2\pi)$$
$$= e^2/2\varepsilon_o hc = 1/137$$

आरनॉल्ड सॉमरफेल्ड नामक भौतिकविद् ने ही सबसे पहले नियतांक α संबंधी भौतिक वर्णन प्रस्तुत करके इसे सूक्ष्म संरचनांक की संज्ञा दी थी। उल्लेखनीय है कि पहले यह नियतांक युग्मनांक कहलाता था। विकिरण के साथ कणों की अन्योन्यक्रिया में यह नियतांक आता है तथा c,h (=ħ/2π) और e का संयोजन कणों (e) तथा प्रकाश (c) के बीच तरंगसदृश (ħ) अयोन्यक्रिया को सूचित करता है।

नियतांक α को सूक्ष्म संरचनांक नाम सोमरफेल्ड ने इसलिए दिया था क्योंकि इसका परिणाम हाइड्रोजन–स्पेक्ट्रम की बहुत बारीक एवं परस्पर सटी रेखाओं के बीच की दूरी से संबंध रखता हुआ पाया गया था। दरअसल, हाइड्रोजन परमाणु के स्पेक्ट्रम में उपस्थित बामर रेखाएं, जिनके आधार पर नील्स बोर ने अपने परमाण्विक मॉडल की स्थापना की थी, बाद में परस्पर थोड़े ही भिन्न तरंगदैर्घ्यों वाली विभिन्न स्पेक्ट्रमी रेखाओं के संयोजन से पायी गई थीं।

संयोगवश, नियतांक α ने बीसवीं शताब्दी की भौतिकी के अनेक रहस्यों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया था। इसे e, ħ तथा c के बीच के एक गहन एवं छिपे संबंधों की परिणति के रूप में व्याख्यायित किया गया था।

नियतांक α के बारे में पॉली के सहयोगी एवं सहकर्मी मार्कुस फियर्ज ने 1930 के दशक के परवर्ती काल में ये विचार प्रकट किए थे : ''लोग इस संख्या से सचमुच प्रभावित थे। अब e को विद्युतगतिकी, ħ को क्वांटम सिद्धांत तथा c को आपेक्षिकता का पर्याय माना जा सकता है। अतः केवल इसी एकल नियतांक में सभी भौतिक सिद्धांत आकार जुड़ जाते हैं। लोगों को यह आशा थी कि अगर यह पता लगाया जा सके कि इस संख्या का यह विशिष्ट मान यानी 1/137 क्यों हैं तो सभी बातों का रहस्योद्घाटन हो जाएगा। सचमुच यह एक जादुई संख्या थी।''

हाइजेनबर्ग तथा पॉली ने वर्षों यह समझने में बिता दिए कि सूक्ष्म संरचनांक का मान 1/137 न होकर, मसलन, 1/136 क्यों नहीं होता है? इस तरह की धारणा रखने वाले वे दोनों अकेले नहीं थे। प्रसिद्ध ब्रिटिश खगोलविद् एवं भौतिकीविद् आर्थर एस. एडिंग्टन ने प्रकृति में किस ढंग से संबद्धता होती है। इसकी पृष्ठभूमि में α की ही मूल भूमिका मानी थी। शायद यही कारण था कि संख्या 137 से वह अति प्रभावित थे; यहां तक कि लवादा रखने वाले कक्ष (क्लॉक रूम) में वह अपनी टोपी को अक्सर उसी संख्या वाले खूंटे के साथ टांग कर रखते थे।

एक तीसरी अविम संख्या

अब तक हमने आपेक्षितता, क्वांटम यांत्रिकी तथा अवपरमाण्विक कणों के गुणधर्मों से संबंधित अविम संख्याएं, 1836 एवं 1/137 गठित की थीं। हब हम गुरुत्वीय नियतांक G से संबंधित एक तीसरी अविम संख्या का गठन करेंगे। एक प्रोटॉन तथा एक इलेक्ट्रॉन के बीच कार्यशील विद्युत एवं गुरुत्वीय बल दोनों ही आकर्षी होती हैं तथा ये दोनों ही बल इन दोनों कणों के बीच की दूरी r के व्युत्मानुपाती होते हैं। प्रोटॉन तथा इलेक्ट्रॉन कणों के बीच लगने वाला विद्युत बल ke^2/r^2 $(k=1/4\ \pi\varepsilon_o)$ जबकि उनके बीच का गुरुत्वीय बल $Gm_nm_e/\ r^2$ है। इन दोनों बलों का अनुपात एक अविम संख्या है जो यथार्थ में अति विशाल है :

आर्थर एस. एडिंगटन

$$ke^2/Gm_nm_e=0.2\times10^{40}$$

खगोलविद् हमें यह बताते हैं कि जब कोई तारा, जिसका आरंभिक द्रव्यमान तीन सौर द्रव्यमानों से अधिक होता है, संकुचित होना शुरू करता है तो इसके पृष्ठ पर लगने वाला गुरुत्वीय बल उत्तरोत्तर प्रबल होता चला जाता है। इससे प्रकाश का तारे से बाहर निकल पाना और भी दुष्कर हो जाता है। अतः दूर खड़े किसी प्रेक्षक को प्रकाश और अधिक धुंधला तथा अधिक आशक्त दिखाई देता है। जब तारा संकुचित होते–होते अंततः एक क्रांतिक त्रिज्या, जिसे स्वार्ज्सचाइल्ड त्रिज्या कहते हैं, के मान को प्राप्त कर लेता है तो उसका निपात तब एक कृष्ण विवर के रूप में होता है जिसमें से कुछ भी यहां तक कि प्रकाश भी बाहर नहीं निकल सकता।

कृष्ण विवर की परिसीमा को घटना क्षितिज का नाम दिया जाता है। यदि निपातशील तारे का आरंभिक द्रव्यमान M है तो स्वार्ज्सचाइल्ड त्रिज्या का व्यंजक है :

$$R_S=2GM/c^2$$

सैद्धांतिक रूप से m द्रव्यमान वाले किसी भी पिंड को क्रांतिक स्वार्ज्सचाइल्ड त्रिज्या तक संकुचित करके उसे कृष्ण विवर में बदला जा सकता है। अगर m_n द्रव्यमान वाले एक न्यूक्लिऑन को संकुचित करके उसे कृष्ण विवर के रूप में बदल दिया जाए तो उसकी स्वार्ज्सचाइल्ड त्रिज्या $2Gm_n/c^2$ होगी। इसमें आने वाले 2 के गुणांक की उपेक्षा कर राशि $a_g=Gm_n/c^2$ को उस न्यूक्लिऑन की गुरुत्व लंबाई को निरूपित करता हुआ हम ले सकते हैं। इसका आशय यह हुआ कि अगर न्यूक्लिऑन की त्रिज्या a_g के बराबर हो तो उसके आकार के निर्धारण में गुरुत्व शक्ति की प्रमुख भूमिका होगी। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं अवपरमाण्विक कणों की संरचना निर्धारण में गुरुत्व शक्ति का कोई महत्व नहीं होता है।

लगभग प्रकाश के वेग से गतिमान किसी इलेक्ट्रॉन का तरंगसदृश एक अभिलक्षणिक आकार होता है जिसका निर्धारण इलेक्ट्रॉन कॉम्पटन लम्बाई द्वारा होता है।

$$\lambda_e=\hbar/m_ec$$

इसी तरह हम न्यूक्लिऑन कॉम्पटन लम्बाई $\lambda_n=\hbar/m_nc$ को एक न्यूक्लिऑन के आकार के माप के रूप में ले सकते हैं। हम यह पाते हैं कि

$$\lambda_e/a_g = \hbar c/Gm_n m_e = (1/\alpha)\ (ke^2/Gm_n m_e)$$
$$= 137 \times 0.2 \times 10^{40}$$

तथा

$$\lambda_n/a_g = \hbar c/Gm_n^{\ 2} = (1\alpha)\ (m_e/m_n)(ke^2/Gm_n m_e) = (137/1836) \times 0.2 \times 10^{40}$$

गुच्छ परिकल्पना (क्लस्टर हाइपॉथीसिस)

उपर्युक्त चर्चा में भौतिकी के सार्वत्रिक नियतांकों से हमने अविम संख्याओं के दो समूहों को प्राप्त किया था। इनमें से प्रथम समूह एक (1) के आस–पास संहत अपेक्षाकृत छोटी संख्याओं से गठित है :

$$m_e/m_n\ ,\ ke^2/\hbar c\ ,\ \hbar c/ke^2\ ,\ m_n/m_e$$

ये संख्याएं क्रमशः 1/1836, 1/137, 137 तथा 1836 हैं। दूसरा समूह 10^{40} के आस–पास संहत अपेक्षाकृत बड़ी संख्याओं से बना है :

$$ke^2/Gm_n^{\ 2}\ ,\ \hbar c/Gm_n^{\ 2}\ ,\ ke^2/Gm_n m_e\ ,\ \hbar c/Gm_n m_e\ ,\ ke^2/Gm_e^{\ 2}$$

ये संख्याएं 0.2×10^{40} के साथ क्रमशः संख्याओं 1/1836, 137/1836, 1, 137 तथा 1836 के गुणन द्वारा प्राप्त होती हैं। प्रथम समूह में आनें वाली संख्याओं का परिसर दोनों समूहों के बीच के विस्तृत पृथक्करण की तुलना में अति गौण है। प्रथम समूह की संख्याओं को तत्समक (यूनिटी) समूह जबकि दूसरे समूह की संख्याओं को हम N_1– समूह का नाम दे सकते हैं।

अविम संख्यओं का अपेक्षाकृत संकीर्ण परिसर वाले दो समूहों के रूप में पृथक्करण एक ऐसी परिकल्पना को जन्म देने के लिए पर्याप्त हैं, जिसे गुच्छ परिकल्पना (क्लस्टर हाइपॉथीसिस) कहते हैं।

वेनर कार्ल हेसनबर्ग

इस परिकल्पना के अनुसार भौतिकी के सार्वत्रिक नियतांकों से प्राप्त होने वाली सभी अविम संख्याएं तत्समक या N_1 समूह की सदस्या हैं। अन्यान्य संख्याओं जैसे कि $N_1^{1/2}$ तथा N_1^{2} को N_1 से प्राप्त किया जा सकता है, पर N_1 की तरह उन्हें इतना आधारी नहीं माना जा सकता। लेकिन फिलहाल गुच्छ परिक्लपना के पक्ष में कोई भी सिद्धांत हमारे पास उपलब्ध नहीं है। लेकिन इसकी व्याख्या संभवतया ब्रह्मांड की मूल संरचना या उसके प्रकार्य में ही कहीं निहित है।

क्या सार्वत्रिक नियतांकों के मान बदल सकते हैं?

अनेक अवसरों पर वैज्ञानिकों ने इस संभावित प्रश्न पर विचार किया है कि ब्रह्मांड के विकास के साथ भौतिकी के सार्वत्रिक नियतांक एकल या सम्मिलित रूप से काल के सापेक्ष परिवर्तित हो सकते हैं या नहीं। आइए, देखें कि क्या गुच्छ परिकल्पना इस अवधारणा के विरोध में है?

अक्सर वैज्ञानिक यह सुझाते हैं कि ब्रह्मांड के प्रसरण के साथ गुरुत्वीय नियतांक G के मान में ह्रास आ सकता है। तत्समक समूह में G विद्यमान नहीं होता है। अतः G के मान में बदलाव का इस समूह की संख्याओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं लेकिन N_1–समूह की सभी संख्याएं G की व्युत्क्रमानुपाती होती हैं। अतः G का मान परिवर्तन N_1–समूह की संख्याओं को उनकी आपसी परिसर से छेड़–छाड़ किए बिना ही तत्समक समूह से दूर ले जाता है। अतः G का मान परिवर्तन गुच्छ परिकल्पना के विरोध में नहीं है। नतीजतन विस्तृत रूप से पृथक्कृत दोनों समूहों की अविम संख्याएं अपने–अपने समूह की सदस्यता को बनाए रखती हैं। लेकिन e, c अथवा ħ में से किसी भी नियतांक का मान परिवर्तन निश्चित रूप से गुच्छ परिकल्पना के विरोध में आ जाएगा।

हाल ही में अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा इंग्लैंड के वैज्ञानिकों के एक दल ने सिडनी स्थित यूनीवर्सिटी ऑफ न्यू साउथ वेल्स के वैज्ञानिक जॉन वेब के नेतृत्व में इस बात का साक्ष्य प्राप्त किया है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के 12–15 अरब वर्षों की कालावधि में सूक्ष्म संरचनांक α के मान में एक भाग के एक–लाखवें हिस्से (10^{-5}) जितना बदलाव आ गया है।

हवाई की मौना किया पहाड़ी पर स्थित संसार की सबसे शक्तिशाली कैक नामक दूरबीन पर कार्य करते हुए उल्लिखित वैज्ञानिकों ने सत्रह सुदूरवर्ती क्वाजरों से आने वाले प्रकाश की आवृत्तियों का अनुमापन किया।

जैसा कि अब सर्वविदित है क्वाजर अत्यंत दीप्त पिंड होते हैं जो संभवतया कृष्ण विवरों से किसी न किसी रूप में संबद्ध होते हैं।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय क्वाजरों, जो हमसे करीब 12 अरब वर्ष दूर हैं, से छूटा प्रकाश अब पृथ्वी तक पहुंच ही रहा है। इस सुदीर्घ यात्रा के दौरान इस प्रकाश को अंतरामंदाकिनीय (इंटरगेलेक्टिक) गैस के बादलों से होकर गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया में प्रकाश का कुछ अंश इन गैसीय बादलों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है।

अवशोषण पैटर्नों के अध्ययन द्वारा ही वैज्ञानिक गैसीय बादलों, प्रकाश के वेग तथा सूक्ष्म संरचनांक आदि के बारे में जानकारी हासिल करते हैं। सूक्ष्म संरचनांक के बदलाव संबंधी अपने परिणाम पर पहुंचने के लिए भी वैज्ञानिकों को इन्हीं अवशोषण पैटर्नों का ही सहारा लेना पड़ा था।

लेकिन उल्लिखित दल के वैज्ञानिकों का कहना है कि अभी और भी पर्यवेक्षण लिए जाने की आवश्यकता है ताकि अधिकतर भौतिकीविद् उनके परिणाम पर अपनी पुष्टि की मोहर लगा सकें। अतः प्राप्त परिणाम की अंतिम पुष्टि के लिए चिली की यूरोपीय दक्षिणी वेधशाला स्थित 'वेरी लार्ज टेलीस्कोप' पर और भी वेध लेने के बारे में ये वैज्ञानिक विचार कर रहे हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि सूक्ष्म संरचनांक में बदलाव संबंधी उनके इस परिणाम की अगर पुष्टि हो गई तो तंतु सिद्धांत (स्ट्रिंग थ्योरी) के नाम से जाने जाने वाले भौतिकी के एक अपरीक्षित सिद्धांत के पक्ष में इससे साक्ष्य उपलब्ध हो सकेगा। इस सिद्धांत में दिक् के तीन तथा काल का एक यानी कुल चार आयामों के स्थान पर दस या छब्बीस आयामों वाले ब्रह्मांड की परिकल्पना की जाती है। ये अतिरिक्त आयाम कुंचित या वक्रित अवस्था में होते हैं। तभी दैनिक जीवन में अथवा भौतिकी के किसी भी प्रयोग द्वारा इनका पता लगाया जा सकना संभव नहीं होता है।

वोल्फ गैंग पॉली

लेकिन सूक्ष्म संरचनांक α के बदलाव संबंधी परिणाम की पुष्टि हो जाने के बाद भी इस बात का पता लगा पाना सचमुच थोड़ा पेंचीदा ही होगा कि α के मान में बदलाव किस कारणवश आया। पेनसिलवेनिया स्टेट यूनीवर्सिटी से संबद्ध क्रिस चर्चिल का इस बारे में कहना है, ''हम दावे के साथ यह नहीं कह सकते कि प्रकाश के वेग तथा इलेक्ट्रान के आवेश इनमें से किस नियतांक अथवा इन दोनों के ही मानों में बदलाव के कारण ऐसा हुआ है।''

सूक्ष्म संरचनांक α के मान में बदलाव की ण्ण्अगर पुष्टि हो गई तो निस्संदेह यह गुच्छ परिकल्पना विरुद्ध होगा क्योंकि उस स्थिति में तत्समक तथा N_1–समूहों के परस्पर पृथक्करण तथा व्यष्टिगत समूह की संख्याओं के आपसी परिसर को बरकरार रख पाना संभव नहीं होगा। अतः गुच्छ परिकल्पना, जिसे फिलहाल तात्कालिक होने का ही दर्जा हासिल है, की नियति वैज्ञानिकों के उल्लिखित अंतर्राष्ट्रीय दल द्वारा प्राप्त परिणाम की अंतिम पुष्टि होने पर ही निर्भर करेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. द वर्ल्ड ऑफ फिजिक्स, जे.एच. वीवर, साइमन एंड सुस्टर, न्यूयार्क, 1987
   इस पुस्तक में प्रसिद्ध भौतिकविदों द्वारा लिखित सुंदर निबंध संग्रहीत हैं। प्रस्तुत लेख आंशिक तौर पर ई.पी. हेरिसन के 'द कास्मिक नम्बर' शीर्षक लेख पर आधारित है
2. द सेकेंड क्रिएशन, आर.पी. क्रीज और सी.सी. मान, एफिलिएटेड ईस्ट–वेस्ट प्रेस प्रा.लि., नई दिल्ली, 1987
3. ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम, स्टीफेन हाकिंग, बेंटम बुक्स, 1998

•••

अगरकर शोध संस्थान, पुणे

औद्योगिक एवं कृषिगत आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न

❒ दिलीप एम. सालवी

जब हम भारत में वैज्ञानिक संस्थानों के निर्माताओं के बारे में सोचते हैं, तो एम.एल. सरकार, एम.एन. साहा, एच.जे. भाभा, एस.एस. भटनागर इत्यादि के नाम सहसा ही हमारे ध्यान में आते हैं। लेकिन सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री एस. पी. अगरकर का नाम कम ही लोग सुनते होंगे, जिन्होंने काफी पहले 1946 में ही पुणे में महाराष्ट्र विज्ञान परिष्कार संस्था (एमएसीएस) की स्थापना की थी। 1992 में उनके सम्मान में इस संस्था का नाम बदलकर 'अगरकर शोध संस्थान' रखा गया। आज यह बौद्धिक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध वातावरण के लिए सुप्रसिद्ध शहर पुणे के कोलाहल से दूर एकांत एवं हरे–भरे पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। इसके निदेशक डॉ. वी.एस. राव कहते हैं, ''वर्तमान समय में हमारे शोध के मुख्य क्षेत्र हैं – अपशिष्ट का जैव–निपटान, कीटों पर जैव नियंत्रण, भेषज विज्ञान, पौध जैव–विविधता, मानव पोषाहार एवं विकास।''

पेटेंट के लिए आवेदन करने और उत्कृष्ट पत्रिकाओं में शोध–पत्र प्रकाशित करवाने के अलावा यह संस्थान पुणे के समीप के औद्योगिक क्षेत्र (पट्टी) और कृषि आधारित उद्योगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए समन्वित प्रक्रिया विकास के निमित अनुबंधित अनुसंधान, परामर्श एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में सहायता करने में भी पीछे नहीं है। संस्थान ने पहले भी बाजार में बिकने वाली कुछ वस्तुओं का उत्पादन किया है। यह गेहूं एवं सोयाबीन के प्रजनन बीजों, संवर्धन गृहों के लिए पदार्थों, भेषज संसाधनों और यहां तक कि सूक्ष्म जैविक संवर्धन की आपूर्ति भी करता है। हाल ही में, सस्थान में ही विकसित 'बायोफर्ट' नामक एक पौध विकास प्रोत्साहक पर्णीय स्प्रे का एक उद्योग द्वारा उत्पादन करके उसे बाजार में भेजा गया है।

अगरकर शोध संस्थान का मुख्य भवन

महाराष्ट्र में अपनी प्रारंभिक शिक्षा के बाद जर्मनी में प्रशिक्षित शंकर पुरुषोत्तम अगरकर (1884–1960) भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व शोध एवं अध्यापन के लिए कोलकाता आ गये। वहां वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र के घोष प्रोफेसर रहे तथा न केवल एक वनस्पतिशास्त्री के रूप में बल्कि एक विज्ञान आयोजक के रूप में भी सक्रिय थे। उन्होंने फूल वाले दो पौधों और एक शतपाद की खोज की, जिनका नाम आज उन्हीं के नाम पर रखा गया है। उन्होंने भारतीय विज्ञान कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की विभिन्न गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया। वे एक सच्चे देशभक्त थे, इसीलिए उन्होंने कलकत्ता वनस्पति संग्रहालय से पौधों की दुर्लभ प्रजातियों के इंग्लैंड को होने वाले स्थानांतरण को रोका। सेवानिवृत्ति के बाद वे पुणे चले गये, जहां महेन्द्रलाल सरकार भारतीय विज्ञान परिष्कार संस्था, कलकत्ता के पदचिन्हों पर एक शोध संस्थान स्थापित करने का उनका सपना साकार हुआ। प्रारंभ में, एमएसीएस की प्रयोगशालाएं और कार्यालय अन्य शैक्षणिक संस्थानों के भवनों में स्थापित हुए। अंततः 1966 में शिक्षा व संस्कृति मंत्रालय ने एमएसीएस को पांच एकड़ भूमि प्रदान की, जहां आज यह खड़ा है। इसके भवन भूरे पत्थरों से यूरोपीय स्टाइल में बने हैं। भवन के आगे एक बागीचा तथा पीछे सुविधाएं एवं नर्सरी है।

संस्थान ने अपनी शुरूआत के बाद से साल–दर–साल प्रगति की है। समय–समय पर इसके पूर्व निदेशकों एवं शोधकर्त्ताओं की पहल पर कई नये भवन, विभाग, विशेष शोध सुविधाएं और छात्रावास बने हैं। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध पोषाहार विशेषज्ञ डॉ. पी.वी. सुखात्मे ने जीव–सांख्यिकी एवं पोषाहार विभाग जोड़ा; डॉ. जी.बी. देवदिकर ने आनुवंशिक व पौध संवर्धन विभाग की शुरुआत की, आदि–आदि। आज, आप सृजन तथा उद्योग व समाज केंद्रित अनुसंधान के मौजूदा वातावरण के अंतर्गत, डॉ. राव औद्योगिक अपशिष्ट जल एवं ठोस अपशिष्टों के जैविक निपटान तथा जैव–रसायनों एवं कृषि–रसायनों के निर्माण पर विशेष बल दे रहे हैं। चार करोड़ रुपए के इसके वार्षिक बजट का तीन–चौथाई हिस्सा संस्थान अपनी विभिन्न शोध गतिविधियों और आभारः यहां तक कि अपने उत्पादों की बिक्री द्वारा अर्जित करता है।

संस्थान की शोध व विकास गतिविधियां मुख्य रूप से तीन प्रभागों, यथा सूक्ष्म जैविक विज्ञान, पौध विज्ञान और पशु विज्ञान में विभाजित हैं। सूक्ष्म जैविक विज्ञान के अंतर्गत, संस्थान ने विभिन्न औद्योगिक अपशिष्टों, रंजकों, विषैली धातुओं आदि के निपटान के लिए विभिन्न सूक्ष्म जैविक प्रक्रियाओं तथा धातु अयस्कों के संवर्धन के लिए प्रौद्योगिकियों का विकास भी किया है। सूक्ष्म जैविक विज्ञान की प्रमुख डॉ. (सुश्री) पी.पी. कानेकर अपनी प्रयोगशाला की उपलब्धियों को गिनाते हुए बहुत गर्व से कहती हैं, ''हमारे दल ने सूक्ष्म जैविक गतिविधि आधारित विभिन्न प्रक्रियाओं का विकास किया है, जिनको विभिन्न उद्योगों द्वारा अपनाया गया है। उदाहरणार्थ बायोगैस से संक्षारक हाइड्रोजन सल्फाइड तथा औद्योगिक अपशिष्ट से विषैले धात्विक क्रोमियम को अलग करने की हमारी सूक्ष्म जैविक विधि का विभिन्न उद्योगों द्वारा प्रयोग जा रहा है।''

इसके पूर्व विटामिन बी–12 के पृथक्करण एवं शुद्धिकरण के लिए किण्वन विधि का हस्तांतरण मुम्बई आधारित एक औषधि कम्पनी को किया गया है। वे आगे कहती हैं, ''हमारे दल ने पश्चिमी महाराष्ट्र के गर्म झरनों, लोनार झील आदि से कुछ सूक्ष्मजीवों को भी पृथक किया है जो रक्त में बने थक्के को विघटित करने वाले एंजाइमों को उत्पादित करते हैं। ये बाजार में वर्तमान में उपलब्ध अन्य एंजाइमों की तुलना में सुरक्षित पाये गये हैं। अब हम किसी उद्योग को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' इसके अलावा संस्थान के पास संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा मान्यता प्राप्त विशेषीकृत सूक्ष्मजीवों का एक डाटाबैंक भी है, जिनका इस्तेमाल धातु पुनर्प्राप्ति या विगलन, औद्योगिक अपशिष्ट जल निपटान, बायोगैस उत्पादन और जैव रसायनों के किण्वन में किया जाता है। इस डाटाबैंक को 'पुणे मिरसेन' (MIRCEN : Microbial Resources Centre) कहा जाता है।

पौध विज्ञान के मामले में यह संस्थान पिछले 30 वर्षों से भी अधिक समय से सोयाबीन, गेहूं और अंगूर जैसी फसलों के सुधार के लिए एक अग्रणी केन्द्र रहा है। संस्थान में उत्पादित सोयाबीन के छह प्रकार, गेहूं के पांच प्रकार अैर अंगूर के पांच प्रकार किसानों के बीच काफी प्रसिद्ध हैं। वास्तव में, यह देश के उन कुछ केन्द्रों में से एक है जहां अंगूर में रोग प्रतिरोध पर शोध जारी है। इसके अलावा, इसके पास पश्चिमी घाट, उत्तर–पूर्वी भारत और अंडमान द्वीपों से लाये गये अंगूरों के 80 से अधिक जंगली संबंधियों का एक अद्वितीय संग्रह भी है। संस्थान के शोधकर्त्ताओं ने काफी कम उपयोग में लाये जाने वाले छोटे फल 'करवंडा' और नीम पेड़ के बारे में भी अध्ययन किया है।

जैव विविधता के क्षेत्र में अनुसंधानों का एक स्वदेशी उदाहरण संस्थान के शोधकर्त्ताओं द्वारा संचालित 'देवराय' का अध्ययन है। देवराय के तहत जंगलों का संरक्षण धार्मिक पवित्रता के साथ किया जाता था। यह महाराष्ट्र के आश्रम व मंदिरों के समीप, कई शताब्दियों से मानव द्वारा अस्पृश्य अगम्य क्षेत्रों और पहाडों में पाया जाता था। इन देवरायों का सर्वेक्षण एवं अध्ययन करने वाले डॉ. एम.एस. कुम्भोजकर ने कहा, ''इन पवित्र जंगलों में हमने विशेषकर आयुर्वेद में औषधीय गुणों वाले बहुत–से पौधों और उनके सक्रिय सिद्धांतों की पहचान की। वास्तव में, ये देवराय उन जंगली पौधों की नर्सरी थे जो सामान्यतः नहीं पाये जाते थे और आज ये संरक्षण के विचार से महत्वपूर्ण हैं। हम उनके जर्मप्लाज्म के साथ–साथ उनके प्रजातीय वानस्पतिक आंकड़े भी एकत्र कर रहे हैं।''

रसायन प्रभाग के वैज्ञानिक प्रभारी डॉ. डी.जी. नायक का कहना है, ''हमने

'क्वीन सब्सटांस' नामक रसायन को पृथक् किया है, जो रानी मधुमक्खी की असामयिक मृत्यु के कारण मधुमक्खियों के छत्ते (कालोनी) को बिखरने से बचाने में सहायता कर सकता है। इस 'क्वीन सब्सटांस' के साथ–साथ एक एंटी–जुवेनाइल हार्मोन के पेटेंट के लिए भी आवेदन किया गया है। यह हार्मोन लाल कपास कीट के प्रति प्रतिरोधी के रूप में कार्य करता है। वस्तुतः संस्थान ने साल–दर–साल ऐसे बहुत से गैर–विषैले कीट नियंत्रक अभिकरणों (एजेंटों) का विकास किया है। संस्थान के शोधकर्त्ताओं ने समीपवर्ती क्षेत्रों में खाद्य व पोषाहार से संबंधित बहुत सारे अध्ययन भी संचालित किये हैं।'' जीव सांख्यिकी व पोषाहार प्रभाग की प्रधान डॉ. (सुश्री) शोभा राव कहती है, ''ग्रामीण बालिकाओं पर किये गये हमारे तृवर्षीय अध्ययन के अनुसार कुपोषण की वजह से गर्भ धारण के दौरान 18 प्रतिशत से अधिक बालिकाएं उच्च जोखिम एवं संबंधित समस्याओं से ग्रस्त होती हैं।'' बच्चों में आजकल होने वाले हृदय रोग, मधुमेह और मोटापे की काफी अधिक घटनाओं के बारे में बात करते हुए वे कहती हैं कि उनका अध्ययन यह बताता है कि ऐसा वसायुक्त भोजन और निष्क्रियता की वजह से होता है। स्पष्टतः टीवी देखना मुख्य रूप से दोषी है।

नवजात शिशु की प्रगति का मापन

एक समृद्ध पुस्तकालय और प्रकाशन गतिविधि के अलावा, संस्थान के पास पुणे के समीप एक प्रायोगिक फार्म, कार्यशाला तथा रेडियो रसायनों की व्यवस्था के लिए एक हॉटलैब (उष्ण प्रयोगशाला) है। वस्तुतः लगभग आधा एकड़ भूमि नर्सरी गतिविधियों के लिए दिया गया है। पॉलिहाउस, ग्लास हाउस और ग्रीन हाउस जैसी प्रायोगिक सुविधाएं यहां उपलबध हैं। संस्थान में दो वनस्पति संग्रहालय भी हैं, जिनका नाम डॉ. अगरकर के नाम पर रखा गया है और जिनकी उत्पत्ति उनकी रुचि की वजह से सम्भव हुई। उनमें पश्चिमी भारत में पौधों पर वर्गीकरणात्मक अध्ययन के लिए सबसे अधिक संसाधन तथा लाइकेन एवं कवक के 28,000 नमूनों का एक अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त संग्रह मौजूद है। संस्थान में खोजे गये फॉसिल्स, द्विकपाटी जंतुओं (सीप आदि), गैस्ट्रोपोड्स, अमॉन शृंगाश्म, शूलाभ, प्रैकियोपॉड वर्ग के पशुओं (भुजपाद), शैवाल, पराग, बीजाणु आदि के 5,000 से अधिक नमूनों का जीवाश्मीय संग्रह मौजूद है। यहां प्राचीन पर्यावरण संबंधी अध्ययन भी प्रगति पर है। इसके अलावा संस्थान में कीटनाशकों, औषधियों और खाद्य योज्यों में विषैलेयन को मापने के लिए उत्कृष्ट सुविधा विद्यमान है।

आज यह संस्थान एक मान्यता प्राप्त स्नाकोत्तर शोध केन्द्र है, जो पूना विश्वविद्यालय, पुणे और महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय, राहुरी से सम्बद्ध है। यहां लगभग 40 वैज्ञानिकों एवं बहुत से तकनीकी विशेषज्ञों के साथ बहुत सारी सरकारी व निजी अनुसंधान परियोजनाएं हमेशा चलती रहती हैं। इसमें सक्षम एवं योग्य शिक्षक भी हैं, जो वनस्पतिशास्त्र, जीवसांख्यिकी व पोषाहार, जैव–प्रौद्योगिकी, पौध संवर्धन, पर्यावरण विज्ञान, भू–विज्ञान, सूक्ष्म जीव विज्ञान और जंतु विज्ञान जैसे विषयों में पीएच.डी. छात्रों का मार्गदर्शन करते हैं। अब तक लगभग 200 छात्र संस्थान में विद्यमान मार्गदर्शन और सुविधाओं को इस्तेमाल करके पीएच. डी. की डिग्री प्राप्त की है। संस्थान की भावी योजनाओं पर बात करते हुए डॉ. राव ने बल देकर कहा ''आने वाले समय में हम आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करके आणविक जीव विज्ञान और जैव विविधता मूल्यांकन के क्षेत्र में काम करने के प्रति कृत संकल्प है।''

हिन्दी रूपांतरण: अनिल कुमार द्विवेदी

•••

पृष्ठ 9 का शेष

डारविन और उनके सिद्धांत पर लिखी गई पुस्तकें:

1. एलन मीए, डारविन एंड हिज फ्लावर्स, न्यूयार्क, टैपलिंगर, 1977
2. ब्रेंट, पीटर, चार्ल्स डारविन: ए मैन आफ एनलार्ज्ड क्युरीआसिटी, न्यूयार्क, हार्पर एंड रो
3. क्लार्क रोनाल्ड, द सरवाइवल आफ चार्ल्स डारविन, न्यूयार्क : रैंडम हाउस, 1984
4. कॉल्प, रैल्फ, टु बी एन इनवैलिड : द इलनेस आफ चार्ल्स डारविन : शिकागो, युनिवर्सिटी आफ शिकागो, 1977
5. गाउल्ड, स्टीफेन जे, एवरसिंस डारविन : न्यूयार्क : नार्टन, 1979
6. हीमैन, स्टैनले, द टेंगल्ड बैंक : डारविन, मार्क्स, फ्रेज़र एंड फ्रायड ऐज इमैजिनेटिव राइटर्स, न्यूयार्क : एथेनियम 1962
7. इरविन, विलियम एप्स, एंगेल्स एंड विक्टोरियंस, द स्टोरी आफ डारविन, हक्सले एंड ईवेल्यूशन, लंडन, वेडन फील्ड एंड निकोल्सन, 1956
8. मूर, जेम्स एंड एड्रियन डेसमंड, डारविन, न्यूयार्क : वार्नर बुक्स, 1992
9. बाउलर, पीटर जे इवोल्यूशन : द हिस्ट्री आफ ऐन आइडिया, बर्कले : युनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1984
10. फुटुयमा, डौगलस, साइंस आन ट्रायल : द केस फार ईवेल्यूशन, न्यूयार्क, पैथेआन, 1982
11. मूर्कीड, एलन, डारविन एंड बीगल, न्यूयार्क, हार्बर एंड रो, 1969
12. डारविन, फ्रांसिस, लाइफ एंड लैटर्स आफ चार्ल्स डारविन, न्यूयार्क, एपेल्टन, 1966

•••

संपादक के नाम पत्र

''हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष'' का प्रथम खण्ड प्राप्त हुआ। मैं इसके लिए आपका बहुत आभारी हूं। आशा है कि आप शीघ्र ही इसके अन्य खण्ड भी प्रकाशित करेंगे, ऐसे कार्य की बहुत आवश्यकता है।

विष्णुकान्त शास्त्री
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश, राज भवन, लखनऊ–227132

आज कूरियर वाला आपका महत्वपूर्ण उपहार दे गया। मेरा मतलब है – ''हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष'' पुस्तक मुझे मिल गई। आप सूचना दे रहे हैं कि यह पहला खण्ड है। विज्ञान प्रसार को इस महत्वपूर्ण प्रयास, प्रकाशन और परिश्रम के लिए बधाई। ऐसे प्रयास विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी को लेकर जो प्रवाद फैला हुआ है उसे दूर करते हैं। एक धुंध छंटती है। मनोबल बढ़ता है। हिन्दी का ठिठकाव टूटता है। बहरहाल बहुत–बहुत बधाई।

बाल कवि बैरागी
संसद सदस्य, सी–201, स्वर्ण जयंती सदन,
डॉ. बिशम्भरदास मार्ग, नई दिल्ली–01

''हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष'' पुस्तक मिली। इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ को तैयार करने के लिए विज्ञान प्रसार की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। यह ग्रंथ न केवल यह बताता है कि पिछले सौ वर्षों में हिन्दी के विज्ञान लेखन की शब्दावली और शैली का विकास किस तरह हुआ है बल्कि यह भी कि इस दिशा में भविष्य में और क्या संभावनाएं हैं। यह ग्रंथ न केवल सामान्य पाठकों के लिए पठनीय और रोचक है बल्कि शोध–कर्त्ताओं के लिए भी महत्वपूर्ण है। इस खंड में विज्ञान लेखन की उस परंपरा को, जो एक सौ बीस साल पहले शुरू हुई थी, हमें इस बात के लिए आश्वस्त करती है कि हिन्दी में विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों को, रचा–बसा लेने की कितनी क्षमता है। संपादक महादेय ने पुरानी पत्र–पत्रिकाओं (अब अनुपल्बध) के आवरण चित्रों और संबंधित रेखाचित्रों को देकर हमारी वैचारिक धरोहर को पुनर्जीवित किया है। आशा है, इसका दूसरा खंड शीघ्र ही प्रकाशित होगा जिसकी हिन्दी जगत को प्रतीक्षा रहेगी।

रणजीत साहा
उपसचिव, साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली – 01

रिचर्ड सोनेनफेल्ड्ट

जिसने पहले रंगीन टी.वी. का डिजाइन बनाया

रिचर्ड सोनेनफेल्ड्ट

रिचर्ड सोनेन फेल्ड्ट का जन्म 3 जुलाई, 1923 को तत्कालीन पूर्वी जर्मनी में हुआ था। सामीवादी विरोध के कारण उनके शुरुआती वर्ष बहुत अशांत रहे। 14 वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ दिया, फिर जर्मन क्वैकर स्कूल (1938–40) कैन्टरबरी इंग्लैंड के छात्र बने; और मई 1940 में एक विदेशी शत्रु के रूप में आस्ट्रेलिया निर्वासित किए गए।

जहाज पर जाते हुए उसने अपनी सूझबूझ और चतुराई का उपयोग करके यह पता लगाने की कोशिश की कि वे कहां जा रहे हैं : दरअसल उसने जहाज के एक झरोखे से देखकर निरीक्षण किया और इसके लिए उसने इंग्लैंड के स्कूल में पढ़ी गोलीय त्रिकोणमिति के ज्ञान का प्रयोग किया।

आस्ट्रेलिया आने पर उसने नाजियों को हराने के लिए अपनी सेवाएं देने का प्रस्ताव करते हुए विन्स्टन चर्चिल को एक पत्र लिखा। इससे उन्हें मुक्त होने में सफलता मिली, लेकिन इंग्लैंड वापस लौटते हुए मुंबई में अटक गए। उन्होंने एक रेडियो फैक्ट्री में काम किया।

अप्रैल 1941 में सोनेनफेल्ड्ट बाल्टीमोर में अपने माता–पिता से पुनः मिल गये। माता–पिता दोनों ही डॉक्टर थे, लेकिन उन्हें अमेरिका में कार्य करने का लाइसेंस नहीं मिला था। सोनेनफेल्ड्ट 1943 में एक इलेक्ट्रिशियन के रूप में अमेरिकी सेना में भर्ती हो गये और उन्होंने उस कमाई से अपने माता–पिता की सहायता की।

इसके साथ–साथ उन्होंने जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में पढ़ाई भी की और 1949 में विशेष योग्यता के साथ बेचलर ऑफ साइन्स की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद वह रेडियो कार्पोरेशन ऑफ अमेरिका (आर.सी.ए.) से जुड़ गये। वह कैम्डेन में कम्पनी की टेलीविजन परियोजना के केंद्रीय व्यक्ति थे। पांच वर्ष में उनके कार्य का परिणाम 35 विभिन्न आधारभूत पेटेंटों के रूप में सामने आया, जो सभी रंगीन टेलीविजन से संबंधित थे। वह अपने मैनेजर मैक्स सिनेल्ट, जिन्होंने यह महान् अवसर उन्हें दिया, को ''अभियांत्रिकीय रचनात्मकता के अग्रदूत'' के रूप में मानते थे।

विश्व के रेडियो एवं टेलीविजन सिग्नल संसाधनों की दुनिया में काम करते हुए उन्हें उस समय की विश्व की अग्रणी इलेक्ट्रॉनिक कंपनी आर.सी.ए. के लिए औद्योगिक प्रक्रिया नियंत्रण में कम्प्यूटर के इस्तेमाल की संभावना के बारे में पता चला। उन्होंने आर.सी.ए. को फॉक्सबोरो कम्पनी के साथ सहयोग के लिए राजी किया जो प्रक्रिया नियंत्रण की एक स्थापित निर्माता थी। इसमें फॉक्सबोरो को इतनी सफलता मिली कि उसने जनरल इलेक्ट्रिक, आई.बी.एम. तथा हनीवेल जैसे दिग्गजों को पीछे छोड़ दिया।

1974 से 1979 तक सोनेनफेल्ड्ट ने कम्पनी की वीडियो डेस्क परियोजना का नेतृत्व किया। अन्ततः यह परियोजना व्यावसायिक असफलता का शिकार हो गयी और वीडियो–कैसेट रिकॉर्डर (वी.सी.आर.) के आने पर इतिहास के कूड़ेदान में डाल दी गयी। वी.सी.आर., वीडियो डिस्कों की तरह रिकॉर्ड करने के साथ–साथ चल भी सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि लाखों डिस्क बिकने के बाद भी आर.सी.ए. को अरबों डॉलर का नुकसान उठाना पड़ा। उन्होंने अपने कैरियर में आए इन विस्मयकारी घुमावों और मोड़ों को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया।

''सोनेनफेल्ड्ट ने अपने इस संदिग्ध कैरियर को बहुत महत्वपूर्ण माना क्योंकि उसमें उन्हें उच्च कोटि के शोधकर्ताओं और उच्च कोटि के प्रबन्धक के साथ काम करने का अवसर मिला था। यह एक सपने का सच होने जैसा था।''

रंगीन टेलीविजन और डिजिटल तकनीक के क्षेत्र में योगदान के लिए सोनेनफेल्ड्ट को 1962 में आई.ई.ई.ई. का फेलो चुना गया।

गुमनामी से ऊंचाई की ओर

अपने इंजीनियरिंग कैरियर में अर्जित उपर्युक्त सभी उपलब्धियों की अपेक्षा सोनेनफेल्ड्ट न्यूरेमबर्ग में नाजी युद्ध अपराधियों की जांच के दौरान हुए अपने अनुभवों को सर्वाधिक महत्व दिया है। वह उनके जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। कैसे एक 23 वर्षीय पैदल सैनिक को न्यूरेनबर्ग सुनवाई के दौरान मुख्य दुभाषिये के रूप में उसकी सेवाओं के लिए सम्मानित करने की संस्तुति (जुलाई 1946) की गयी, यह एक मोहक कहानी है।

मई 1945 में सोनेनफेल्ड्ट को न्यूरेमबर्ग सुनवाई के दौरान मुख्य दुभाषिये के रूप में भर्ती किया गया। वहां उन्होंने जहां तदानुभूति प्रदर्शित की, वहीं अमेरिकी अभियोजकों का विश्वास भी प्राप्त किया। वह जांच के लिए प्रश्नों की रूपरेखा भी सुझाते थे।, जिससे कैदियों के साथ सहज–संवाद स्थापित करने में मदद मिली।

उदाहरण के लिए हिटलर के थलसेनाध्यक्ष फ्रैंज हाल्डर ने उल्लेख किया कि उसने एक बार हिटलर से गोयरिंग को बड़े घमंड से यह कहते हुए सुना कि ''उसने जर्मन रायड को आग में डाल दिया'' – यह अप्रैल 1933 की वह घटना थी जिसमें हिटलर ने अपनी शक्तियों को समेकित करने के लिए अपने अधिकार में लिया था।

उक्त बयान पर जब गोयरिंग का जवाब पूछा गया तो उसने इसे एक मजाक कहकर टाल दिया। इस पर सोनेनफेल्ड्ट ने प्रश्न किया, ''फील्ड मार्शल गोयरिंग क्या तुम हमें ऐसे किसी दूसरे मजाक का उदाहरण सुना सकते हो, जो तुमने हिटलर से कहा हो?'' वह अच्छी तरह जान गया था कि गोयरिंग ही एकमात्र ऐसा युद्धबन्दी था जिसके पास कुछ जानकारी थी।

इस प्रकार के अनुभवों के बावजूद सोनेनफेल्ड्ट ने कहा, कि उनका हृदय अभी भी जलता है, जबकि वे अमेरिकियों को यह दावा करते हुए सुनते हैं कि वे क्या नहीं कर सकते। उन्होंने उन बातों के लिए कोई प्रशंसा नहीं व्यक्त की कि एक सर्वसत्तात्मक समाज में रहना कितना मुश्किल है जहां असहमति व्यक्त करना तक एक अपराध है।

''सोनेनफेल्ड्ट ने पूछताछ के दौरान कैदियों के व्यवहार से संबंधित नीतियों और प्रक्रियाओं की जो संस्तुति की। वे बेहद उपयुक्त और व्यावहारिक पायी गयीं। उन्हें स्वीकार कर लिया गया तथा पूछताछ करने वालों द्वारा अब तक इस्तेमाल किया जाता है। उन्होंने आश्चर्यजनक कूटनीति एवं व्यवहार कुशलता द्वारा उनको (विभिन्न देशों के नागरिकों और उच्च श्रेणी और रैंक वाले सैन्य कर्मी) इस तरह संभाला कि उनका पूरा सहयोग भी उन्हें प्राप्त हुआ।''

अमेरिकी सेना के जनरल गिल द्वारा दी गयी यह श्रद्धांजलि सोननेफेल्ड्ट द्वारा प्राप्त किए गये बहुत से सम्मानों में सबसे महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुतिः आर. पार्थसारथी
प्लाट न. 42, हैवरली, रामनगर, पहली स्ट्रीट, वेलाचेरी, विजयनगर, चेन्नई 600042

आभार : आई.ई.ई.ई. स्पेक्ट्रम के जुलाई 2000 अंक में विलियम स्वीट द्वारा तैयार किए गये प्रोफाइल पर आधारित

हिन्दी रूपांतरण : अरुण कुमार श्रीवास्तव

•••

एड्स केवल चिकित्सा समस्या ही नहीं है

डॉ. (श्रीमती) सुनीला गर्ग, प्रोफेसर, सामुदायिक चिकित्सा, मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज, नयी दिल्ली पिछले एक दशक से भी अधिक समय से राष्ट्रीय स्तर पर एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को डिजाइन करने और लागू करने में सक्रिय रूप से सन्नद्ध रही हैं। वे राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) की विभिन्न समितियों में शामिल हैं। डॉ. गर्ग ने देश में एड्स/एचआईवी की स्थिति के बारे में ड्रीम 2047 से विस्तार से बातचीत की। डॉ. गर्ग के साथ हुए साक्षात्कार के कुछ उद्धहरण इस प्रकार हैं :

ड्रीम 2047: मानव सभ्यता के सम्पूर्ण इतिहास के दौरान मानव एक या दूसरे संक्रामक रोग से लड़ता रहा है। एड्स इस कड़ी में एक नवीनतम रोग है, जो ह्यूमन इम्यूनोडे फिसिएंसी (एचआईवी) वायरस के कारण होता है। यह अन्य भयानक संक्रामक रोगों से कैसे अलग है? इसे दूसरे रोगों की तुलना में अधिक घातक क्यों माना जाता है?

डॉ. सुनीला गर्ग: एक्वायर्ड इम्यून डेफिसिएंसी सिंड्रोम, जिसका प्रचलित नाम एड्स है, एक ऐसा संक्रामक रोग है, जिसका मुकाबलना करना इसलिए कठिन है कि यह मानव व्यवहार से काफी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। एड्स या एचआईवी संक्रमण महज एक चिकित्सा समस्या नहीं,अपितु एक सामाजिक मुद्दा भी है और यह बिना किसी जाति, सम्प्रदाय और धर्म के भेदभाव के साथ किसी को या प्रत्येक को प्रभावित कर सकता है। इसके अलावा इसके साथ जुड़ा सामाजिक कलंक भी है। साथ ही टी.बी., निमोनिया, क्रिप्टोकोकल मेनेनजाइटिस जैसी समयानुवर्ती संक्रामक रोगों की चिकित्सा में काफी धन खर्च होता है और यह व्यक्ति के चरम उत्पादक वर्षों को भी प्रभावित करता है। इससे रोग के प्रबंधन की समस्याएं और बढ़ जाती हैं। अन्य यौन संक्रमित रोगों (एसटीडी) के विपरीत एड्स से बचाव के लिए मौजूदा समय में कोई चिकित्सा या वैक्सीन उपलब्ध नहीं है। एड्स के कारण होने वाली मौतों की संख्या भी खतरनाक रूप से बढ़ रही है। सिर्फ वर्ष 2001 में ही पूरे विश्व में एड्स के कारण 30 लाख लोग मौत के मुंह में समा गये। एचआईवी, जो इस रोग का कारक है, काफी उत्परिवर्ती है। अब तक एचआईवी के दो प्रकारों – एचआईवी–1 और एचआईवी–2 की खोज की जा चुकी है। इन दो प्रकारों के भी कई उप–प्रकार होते हैं, उदाहरणार्थ – भारत में ज्ञात 39.7 लाख एचआईवी पॉजीटिव मामले भारत में पाये जाने वाले एक उप–प्रकार एचआईवी–1 सी से ही संक्रमित हैं। एड्स का उपचार भी काफी महंगा है और अनिश्चत समय तक इलाज चलने के कारण, इसे सरकारी सहायता भी प्राप्त नहीं है। बाजार में वर्तमान समय में उपलब्ध दवायें सीमित हैं और अपनी खराब प्रभावोत्पादकता के बावजूद काफी महंगी भी है।

ड्रीम 2047: विश्वभर में चिकित्सा वैज्ञानिक काफी समय से कई लोगों पर एड्स वैक्सीन पर काम कर रहे हैं। एड्स वैक्सीन अनुसंधान की वर्तमान स्थिति क्या है? बाजार में एक प्रभावशाली एड्स वैक्सीन के कितनी जल्दी आने की आशा की जा सकती है?

डॉ. गर्ग: जैसा कि मैंने पहले कहा है, एचआईवी एक उच्च उत्परिवर्ती वायरस है। एक प्रभावशाली एड्स वैक्सीन के विकास में इस वायरस के नियमित अंतराल पर बहुत–से उप–प्रकारों में उत्परिवर्तित होने की उसकी क्षमता मुख्य बाधा है। इसके बावजूद विश्व के विभिन्न भागों में प्रयास जारी हैं, उदाहरण के लिए भारत ने थाईलैंड में संचालित होने वाले एचआईवी–1सी उप–प्रकार के विरुद्ध एक वैक्सीन का क्षेत्र–परीक्षण करने के लिए एक सहयोग समझौता किया है। चिकित्सकीय परीक्षण के तीसरे चरण में है। वैक्सीन के विकास में शामिल अन्य प्रमुख कारक हैं : सुरक्षा, प्रभावोत्पादकता और लागत। पूर्ण रूप से सुरक्षित होने के अलावा इसकी प्रभावोत्पादकता दर 40 प्रतिशत या उससे अधिक है और इस वैक्सीन की कीमत अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए, ताकि लोग इसे खरीदने में समर्थ हो सकें। इन सभी कारकों को शामिल करते हुए यह वैक्सीन उपयोग के लिए 5–6 वर्ष से पहले उपलब्ध नहीं हो पायेगा।

ड्रीम 2047: एड्स का खतरा भारत में कितना गंभीर है?

डॉ. गर्ग: सन् 2001 के अंत तक सम्पूर्ण विश्व में लगभग 40 मिलियन एचआईवी/एड्स के मामले प्रकाश में आये हैं। आनुमानित तौर पर इनमें से लगभग 10 प्रतिशत भारत में हैं। संक्षेप में, वर्तमान में भारत में लगभग 3.97 मिलियन एचआईवी/एड्स के मामले हैं। कई वर्षों से देश में चल रहे एचआईवी और एड्स निगरानी कार्यक्रम से काफी चिंताजनक और वृद्धि की प्रवृत्ति नजर आयी है। 1986 में जब पहली बार एड्स का मामला भारत में प्रकाश में आया था, उस समय संक्रमित लोगों की संख्या प्रति हजार 2.5 थीं 1992 में यह बढ़कर प्रति हजार 11.2 हो गयी, 1996 में प्रति हजार 16.13 और 1999 में यह बढ़कर प्रति हजार 24.22 हो गयी थी। अक्टूबर 2001 में सम्पन्न किए गये नवीनतम एड्स निगरानी कार्यक्रम के दौरान यह पाया गया कि 29007 भारतीय एड्स से प्रभावित हैं, जिनमें से 22023 (लगभग 76 प्रतिशत) पुरुष हैं और शेष महिलाएं। एड्स के अधिकतम मामले महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु से प्राप्त हुए हैं। कुल संख्या के आधे मामले अकेले महाराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं।

डॉ. (श्रीमती) सुनीला गर्ग

ड्रीम 2047: कृपया भारत में उठाये गये कुछ एड्स नियंत्रण कदमों के बारे में बताएं?

डॉ. गर्ग: भारत में एड्स का प्रथम मामला 1986 में प्रकाश में आया था। उस समय इस खतरे के प्रति सरकार ने इसे कानून एवं व्यवस्था से संबंधित एजेंसियों की सतर्कता की समस्या के रूप में देखा। 1990 के दशक के आरंभ में सरकार आगे बढ़कर इसे एक औषधीय समस्या के रूप में देखने लगी और इसके उपरान्त राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) की स्थापना की गयी। एड्स नियंत्रण क्षेत्र में प्रथम वृहद् संगठित कार्य 1992 में आरंभ हुआ, जब सरकार ने देश में चल रहे एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के प्रथम चरण के हिस्से के तौर पर विश्व बैंक से 84 मिलियन डॉलर का ऋण प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप 26 राज्यों में 55 प्रहरी निगरानी स्थलों की स्थापना की गयी। 1996 में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यावसायिक रक्त प्रदाताओं पर प्रतिबंध लगा दिया। विविध सहयोगियों के साथ अनुरक्षित यौन संबंध स्थापित करने से एड्स होने की संभावना के बाद रक्त आधान को दूसरा महत्वपूर्ण एचआईवी कारक माना जाता था। वर्तमान में लगभग 320 प्रहरी निगरानी स्थल स्थापित हैं जो एसटीडी क्लीनिक्स और नशीली दवा लेने वाले जैसे वैसे ''उच्च जोखिम समूह'' और प्रसव–पूर्व क्लीनिकों में जाने वाली महिलाओं जैसे ''निम्न जोखिम समूहों'' पर निगाह रखता है।

भारतीय लोगों के बीच एचआईवी/एड्स के संभावित खतरों के बारे में जानकारी बढ़ाने के लिए वृहद् स्तर पर कार्यक्रम चल रहा है। विशेषकर 1999 के उपरान्त, जबसे नाको कार्यक्रम के द्वितीय चरण को आरंभ किया गया है, सम्पूर्ण देश में वृहद स्तर पर प्रचार–प्रसार किया जा रहा है। कई मंत्रालय और औद्योगिक संस्थाएं इस कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं। कांडोमों का सामाजिक वितरण प्रभावी पाया गया, क्योंकि इस दौरान 1995–96 में जहां इसका वितरण 163 मिलियन था, वह 2000–2001 में 465 मिलियन हो गया है। रक्त सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। रक्त आधान और रक्त उत्पादों से संबंध रखने वाली आदान औषधि के सफल प्रचार–प्रसार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। साथ ही, सम्पूर्ण देश के मेडिकल छात्रों के लिए इसे एक अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

ड्रीम 2047: हाल में घोषित की गयी राष्ट्रीय एड्स नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

डॉ. गर्ग: हाल ही में घोषित राष्ट्रीय एड्स नीति का मुख्य उद्देश्य सन् 2007 तक इस रोग पर नियंत्रण प्राप्त कर लेना है। इसका तात्पर्य यह है कि देश में एड्स/एचआईवी की स्थिति इस रोग के नियंत्रण प्रयासों में किसी प्रकार की अतिरिक्त वृद्धि के बिना स्थिति पर काबू पाया जा सकेगा। इसके अलावा नीति का उद्देश्य रोग की जटिलताओं के बारे में लोगों में जागरूकता लाने तथा उन्हें बचाव के साधन मुहैया कराना है। इस नीति में युवकों एवं अन्य प्रभावकारी वर्गों में पारंपरिक नैतिक मूल्यों को जगाने के साथसाथ ऐसे वातावरण का निर्माण करना भी है जिसमें जनता के सभी वर्गों में इसके संक्रमण से बचने की क्षमता जागृत हो जाय। इसके अलावा नीति में एचआईवी

शेष पृष्ठ 16 पर जारी

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

नासा ने मंगल पर बर्फ की खोज की

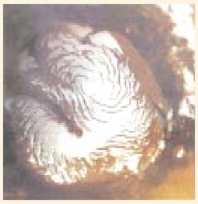

मंगल ग्रह की सतह के नीचे बर्फ का एक सागर है जो कि ईंधन और पीने के पानी का एक साधन हो सकता है। मंगल ग्रह का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों ने पाया कि सतह के ठीक नीचे बर्फ की एक परत है। मंगल ग्रह का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिक पानी की खोज कई कारणों से कर रहे थे। इनमें से एक प्रमुख कारण यह था कि जीवन के लिए पानी अनिवार्य है, और यदि कोई इस ग्रह पर कुछ समय बिताना चाहता है तो उसे पीने और ऊर्जा के रूप में इस्तेमाल के लिए पानी की जरूरत होगी।

स्रोत : साइंस, मई 2002

मधुमेह के उपचार हेतु प्रोटीन सहायक

प्रोटीन शरीर की वसा और शर्करा पर प्रभाव डालती है। इस प्रोटीन को रोकने का कोई तरीका मिल जाए तो यह मोटापा और शर्करा को नियंत्रित करने में सहायक हो सकती है। इस तरह के प्रमाण वैज्ञानिकों ने अपनी एक रिपोर्ट में दिए हैं। परीक्षणों से पता चला है कि आनुवंशिक रूप से पैदा किए गए चूहे जिनमें यह प्रोटीन कम थी, अधिक वसा लेने के बावजूद पतले रहते हैं। यदि मनुष्यों में इस प्रोटीन को किसी प्रकार से कम कर दिया जाय तो उनमें मधुमेह और मोटापा कम किया जा सकता है। इस प्रोटीन को पी.टी.पी. वन.बी. (PTP1B) प्रोटीन ट्रायोसाइन फास्फेट 1B कहा गया जो उन प्रोटीन और एन्जाइम से मिल जाता है, जिनके कारण चूहे का मोटापा बढ़ता है। कई छोटी बायोटेक और बड़ी फार्मास्टिकूल कम्पनियां इस तरह की दवाईयां बनाने में संलग्न हैं।

स्रोत : न्यू साइंटिस्ट, मई 2002

कार्बनिक खेती से भूमि अधिक उपजाऊ

कार्बनिक खेती परंपरागत ढंग से की जाने वाली खेती की तुलना में अधिक प्रभावी होती है। इसमें भूमि पहले से कहीं अधिक उपजाऊ हो जाती है। रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर, स्विटजरलैंड के पॉल मेडर और उनके सहयोगियों ने एक लम्बे अध्ययन, जिसमें उत्पादकता, पर्यावरणीय स्वास्थ्य, जैव विविधता और ऊर्जा खपत की तुलना परंपरागत ढंग से की जाने वाली खेती से की और कहा कि यदि खेती में कार्बनिक उपायों का कारगर ढंग से उपयोग किया जाए तो उतनी ही उपज के लिए कम ऊर्जा लगानी पड़ेगी। यद्यपि कार्बनिक खेत की पैदावार सामान्य खेतों से कम होती है, परन्तु पारिस्थितिकी की दृष्टि से इसके कहीं अधिक लाभ हैं – बहुत बड़ी मात्रा में कीटों को खाने वाले सूक्ष्म जीव और अन्य लाभदायी जीव कार्बनिक रूप से उत्पन्न होकर भूमि में मिल जाते हैं और उनके प्रभावी अपघटन से भूमि के लिए अतिआवश्यक पोषक तत्व उत्पन्न करने लगते हैं।

अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपना अध्ययन चार खेतों में प्रारंभ किया, जिनमें गेहूं, आलू, चुकन्दर, लौंग, जौ उगाए। किसानों ने परंपरागत ढंग से दो खेतों में फसल उगाई, शेष दो खेतों में कार्बनिक ढंग से खेती की, जिनमें कृत्रिम उर्वरकों की जगह कूड़ा खाद, गोबर खाद डाली और रसायनिक कीटनाशकों की बजाए मशीनी खर–पतवार का प्रयोग करके पौधों से निकाले रसों को डाला। वैज्ञानिकों ने पाया कि कार्बनिक खेत में 50 प्रतिशत से कुछ कम पौष्टिक तत्व मिले (क्योंकि पौधों को कोई कृत्रिम खाद नहीं दी गई) परन्तु उत्पादन औसत से केवल 20 प्रतिशत कम था। अतः कार्बनिक ढंग से उगाए गए पौधों ने उपलब्ध पौष्टिक तत्वों का अधिक कुशलता से उपयोग किया। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि कार्बनिक भूमि में जैव–विविधता कहीं अधिक मात्रा में होती है। इतना ही नहीं जड़ में एकत्रित फफूंदी पौधों को पौष्टिक तत्वों को शोषित करने में सहायता करती है और इसके साथ कीटों को खाने वाले सूक्ष्म जीव कीटनाशक खाने वाली मकड़ियों और भूमि में पौष्टिक तत्वों की शृंखला बनाने वाले जीवों की संख्या कार्बनिक खेतों में उल्लेखनीय रूप से बहुत अधिक होती है।

स्रोत : साइंटिफिक अमेरिकन, मई 2002

चाय हृदय–रोग की रोकथाम में सहायक

अनेक संस्कृतियों में, पेय पदार्थों में चाय अनेक स्वास्थ्यकारी गुणों वाली मानी गई है। अब एक नए अनुसंधान में यह बताया गया है कि हृदय संबंधी बीमारियों के उपचार में यह बात सही हो सकती है। जर्नल ऑफ अमेरिकन, हार्ट एशोसिएशन में प्रकाशित एक अध्ययन के परिणामों के अनुसार जिन हृदय रोगियों ने नियमित रूप से चाय पी, उन्हें चाय न पीने वालों की तुलना में दिल का दौरा कम पड़ा।

दिल के दौरे से उभरने वाले 1900 रोगियों पर किए गए परीक्षणों में हार्डवर्ल्ड मेडिकल स्कूल के कीनथ मुकमल और उनके सहयोगियों ने पाया कि चाय पीने वाले व्यक्तियों को हार्ट अटैक होने पर मृत्यु की संभावना कम होती है। उस वर्ष इनमें से लगभग आधे से अधिक रोगी ऐसे थे, जिन्होंने दिल का दौरा पड़ने से पहले तक चाय नहीं पी थी और 615 ऐसे रोगी थे जिन्होंने कभी–कभी (सप्ताह में 14 कप से कम) चाय पीते थे और 266 लोग अधिक चाय पीने वाले थे (सप्ताह में औसतन 19 कप) अध्ययन समाप्त होने तक लगभग साढ़े तीन साल बाद तक केवल 313 लोगों की मृत्यु हो गई। कुल मिलाकर कभी–कभी चाय पीने वालों ने, न पीने वालों की तुलना में, चिकित्सीय तथा जीवन शैली में भिन्नताओं के होते हुए भी मृत्युदर में 28 प्रतिशत की कमी प्रदर्शित की, जबकि अत्यधिक चाय पीने वालों ने मृत्यु दर में 44 प्रतिशत की कमी दर्ज की।

अध्ययन दल को संदेह है कि चाय में फ्लेबोनाइड्स नामक एंटी आक्सीडेंट होता है जो हरी और काली चाय में बहुत पाया जाता है। वही चाय के पीने, और मृत्यु से उबरने के बीच संबंध को स्पष्ट कर सकता है। पूर्व में किए गए अनुसंधान बताते हैं कि फ्लेबोनाइड्स कम घनत्व वाले लिपोप्रोटीन के ऑक्सीकरण को रोकता है और हृदय संबंधी रोगियों की रक्त नलिकाओं की शिथिलता क्षमता को बढ़ाकर उनके आराम करने की योग्यता बढ़ा सकता है। टेस्ट ट्यूब में किए गए परीक्षण बताते हैं कि फ्लेबोनाइड्स में रक्त के थक्के न जमने देने का भी गुण होता है।

स्रोत: साइंटिफिक अमेरिकन, मई 2002

संकलन: कपिल त्रिपाठी

•••

पृष्ठ 10 का शेष

संक्रमित लोगों को सामुदायिक सहायता प्रदान करना भी है। इस नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जो लोग रोग ग्रसित हैं उन्हें बीमारी की हालत में अस्पताल और घर में सामुदायिक स्वास्थ्य सेवा के माध्यम से सहायता पहुंचाई जाय। इसके एजेंडा में ट्रक ड्राइवरों, व्यावसायिक यौन कर्मियों और नशीले पदार्थों का इंजेक्शन लेने वाले लोगों जैसे उच्च जोखिम समूहों तक मजबूती से पहुंचना और रोग की संभावना नियंत्रण प्राप्त करना है। ऐसा समेकित आपसी परामर्श द्वारा किया जा सकता है। यौन संक्रमित रोगों और एड्स/एचआईवी संक्रमण के बीच घनिष्ठ संबंध को ध्यान में रखते हुए यह नीति एसटीडी मामलों पर ध्यान देने और संबंधित उपायों का नजदीक से निरीक्षण करने के लिए एक रूपरेखा बनाती है। इसके लिए देश में मौजूद वर्तमान एसटीडी चिकित्सालयों को और अधिक सुविधाजनक बनाना होगा। और ऐसे चिकित्सालयों में जाने वाले लोगों के लिए जागरूकता एवं परामर्श कार्यक्रम पर ध्यान होगा। एचआईवी संक्रमित माताओं से बच्चे को होने वाले संक्रमण की घटना को कम करने का प्रयास भी करना होगा। नवजात शिशुओं को इस रोग से बचाने के लिए एचआईवी संक्रमित गर्भवती महिलाओं को नाको पहले से ही निःशुल्क दवाये उपलब्ध करा रहा है। नयी एड्स नीति की कुछ अन्य विशेषताएं इस प्रकार हैं : एड्स/एचआईवी संक्रमण के लिए कम कीमत पर दवाओं की उपलब्धता में सुधार करना, विस्तृत सार्वजनिक जागरूकता अभियान और विद्यालय एड्स जागरूकता कार्यक्रम को मजबूत बनाना।

राष्ट्रीय एड्स नीति में पर्याप्त वित्तीय शक्ति प्रदान करके राज्य एड्स नियंत्रण संगठनों को और मजबूत करना भी शामिल है ताकि नये एवं वर्तमान में जारी एड्स नियंत्रण कार्यक्रमों को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाया जा सके।

•••

❒ टी.वी. जयन